THEORY OF INDIAN AND WESTERN LITERATURE

(DHIND02)

(M.A. HINDI)

ACHARYA NAGARJUNA UNIVERSITY

CENTRE FOR DISTANCE EDUCATION

NAGARJUNA NAGAR,

GUNTUR

ANDHRA PRADESH

M.A. HINDI FIRST YEAR

PAPER-2: THEORY OF LITERATURE
SYLLABUS

(1) Indian theory of Literature:

(1)

(a) Rasa tradition- -The history of Rasa, The concept of Rasa, Rasa sutra of Bharata and the Nishpatti (emergence) of Rasa, Sadharanikaran (identification), The form of Rasa, earthly or heavenly; Enjoyment of Rasa; Rasa, blissful or sorrowful.

(b) Dhwani Tradition: The History of Dhwani tradition: Origin of Dhwani; Different types of Dhwani; Different stages of Dhwani; Opinions opposed to Dhwan

(c) Ouchitya (propriety)—The concept of Ouchitya and harmony among its parts.

(2)

(a) Alankara tradition—The concept of Alankara, The History of Alankara tradition, Classification; Alankara and Rasa.

(b) Reeti tradition- - Reeti and Style; eeti and Guna; The nature of the poet and Reeti.

(c) Vakrokti tradition - -The concept of Vakrokti; Vakrokti and its history; Different types; Swabhavokti and Vakrokti; word and meaning; Nature of the poet and poetic process; Vakrokti and Expression.

(3) Western theory of Literature (Ancient):

a) Plato—Doctrine of poetic inspiration and stress on Imitation.

b) Aristotle- -New interpretation to Imitation; His concept of Trasadi in detail.

c) Longinus- - Kavya men udatta (sublimation) tatva; The concept of udatta.

Western theory of Literature (Modern):

(4) I.A. Richards – Mulya siddhanta (Value based theory); different uses of language; the qualities of a critic. Dr. T.S. Eliot- -Parampara aur Vaiyaktic Pragna (tradition and individual talent); Vastunishta Samikaran (Objective correlative); Nirvaiyaktikata ka siddhanta (the principle of negative capability); Classical and the Romantic. A.R. Levis- -Study of Value.

(5) Marxist criticism: Basis and the first book; Literature and class struggle; Literature and thought process; Critical realism and socialistic realism; Commitment in literary criticism. Existentialism; Formalism{ Rupvad]; Russian formalism; Prague Formalism; French formàlism; American new criticism.

(6) Study of literary forms: Study of poetic forms- -Mahakavya (Epic), Khanda kavya,(Narrative poetry) Mukta kavya (Free verse), Lyrical poetry. A study of the nature and form of other literary genres: Plays and one act plays; Novel and short story, essay, sketch, memoir, biography etc.

TEXT BOOKS

1.Bharatiya aur Pastatya kavyashastra- -Dr. Archana Srivastav, Vishvavidyalay Prakashan, Varanasi, Chouk, P.B. No.1142, Varanasi-221001.

2. Bharatiya Sahitya Sastra- - Acharya Baldev Upadhaya, Nandkishore & sons, Chouk, Varanasi-221001.

3. Pastatya Kavyashastra ke Siddhanta- -Dr. Shantiswarup Gupta, Ashok Prakashan, Nayee Sadak, Delhi 6.

4. Bharatiya Kavyashastra ki Bhumika- -Dr. Bhagirath Mishra.

REFERENCE BOOKS

1. Siddhant aur Adhyayan—Gulab Roy, Atmaram & Sons, Delhi.
2. Kavya ke Roop- -Gulab Roy, Atmaram & Sons, Delhi.
3. Pastatya Kavyashastra - -Devendranath Sharma, National publishing House, Delhi.
4. Bharatiya Kavyashastra –Parampara aur prayog - -Dr. Harmohan,--Archana Publishing House, New Delhi.

(DHNIND 02)

M.A. (Previous) DEGREE EXAMINATION, MAY 2009
(Examination at the end of First Year)
Hindi
Paper II - THEORY OF INDIAN AND WESTERN LITERATURE

Time : Three hours **Maximum : 100 marks**

सूचना : किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

(5 x 20 = 100)

1. भरत मुनि के रस सिद्धांत का विवेचन कीजिए।
2. ध्वनि क्या है? ध्वन संप्रदाय करते हुए रीति और शैली के अंतर को समझाइए।
3. रीति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए रीति और सैली के अंतर को समझाइए।
4. अलंकार की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अलंकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
5. वक्रोक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वक्रोक्ति संप्रदाय के इतिहास को समझाइए।
6. अरस्तु के काव्य सिद्धांतों का परिचय दीजिए।
7. लांजाइनस के काव्य सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए।
8. टी.यस. इल्यिट के काव्य सिद्धांतों की समीक्षा कीजिए।
9. अस्तिरववादी सिद्धातों का परिचय दीजिए।
10. किन्हीं दो विषयों पर टिप्पणी लिकिए।
    (1) महाकाव्य के लक्षण
    (2) आई.ए. रिचर्डस के काव्य सिद्धांत
    (3) उपन्यास और नाटक का अंतर
    (4) निबंध के तत्व

भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य - शास्त्र

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग : भारतीय काव्य - शास्त्र

1.	रस सिद्धान्त	1.1 - 1.6
2.	अलंकार संप्रदाय और उसके सिद्धान्त	2.1 - 2.7
3.	रीति संप्रदाय	3.1 - 3.3
4.	ध्वनि संप्रदाय	4.1 - 4.6
5.	वक्रोक्ति संप्रदाय	5.1 - 5.4
6.	औचित्य संप्रदाय और उसके सिद्धान्त	6.1 - 6.3
7.	नाटक	7.1 - 7.4
8.	महाकाव्य	8.1 - 8.3
9.	गीतिकाव्य	9.1 - 9.2
10.	उपन्यास	10.1 - 10.4
11.	कहानी	11.1 - 11.3
12.	निबन्ध	12.1 - 12.5
13.	जीवनी	13.1 - 13.4
14.	पत्र	14.1 - 14.2
15.	एकांकी	15.1
16.	रिपोर्ताज	16.1
17.	आत्मकथा	17.1
18.	रेखाचित्र	18.1
19.	संस्मरण	19.1

(भारतीय) प्राचीन काव्य शास्त्र

पाठ - 1

रस सिद्धान्त

प्र.1. रस सिद्धान्त क्या है, चर्चा कीजिए।

(अथवा)

रस निष्पत्ति की व्याख्या कीजिए।

(अथवा)

रस सिद्धान्त के विभिन्न आचार्यों के मत स्पष्ट कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. प्रवर्तक
3. भावों का वर्गीकरण
4. रस के विभिन्न अंग
5. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद
6. शंकुक का अनुमितिवाद
7. भट्टनायक का भोगवाद
8. अभिनवगुप्त की अभिव्यक्ति
9. आधुनिक विद्वानों के मंतव्य
10. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

रस शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य का प्रमुख अंग है। अध्यात्मिक क्षेत्र में 'रस' को भगवान बताया गया है। रसो वै सः - रस ही परमात्मा है - नारायणोमनिषत। साहित्यकारों के अनुसार काव्यानन्द रस का साधारणीकरण ब्रह्मानन्दसहोदर कहलाता है।

2. प्रवर्तक :-

रस सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। नाट्य शास्त्र के आधार पर उन्होंने बताया कि - विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से रसं की निष्पत्ति होती है - विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगात् रसनिष्पत्तिः। कालानुसार भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त प्राचीन आचार्यों ने रस के बारे में अपना - अपना मत प्रकट किया। फिर रामचन्द्रशुक्ल, श्यामसुन्दर दास, नगेन्द्र और गुलाब राय ने रस सिद्धान्त के बारे में अपनी - अपनी सम्मति दी।

3. भावों का वर्गीकरण :-

रस सिद्धान्त में काव्य का लक्षण पाठक को आनन्दानुभूति प्रदान करना है। इस काव्यानन्द का दूसरा नाम 'रस' है। यह आनन्दानुभूति या रसानुभूति पाठक प्राप्त करता है। पाठक का हृदय विविध भावनाओं से उद्वेत्तित होता है। रस सिद्धान्त के अनुसार भावों का प्रधानतया दो रूपों में वर्गीकरण किया जाता है।

1. स्थायी भाव और
2. संचारी भाव

स्थायी भाव धीरे - धीरे विकसित होता है और दीर्घ काल तक हृदय में स्थित रहता है। उदाहरण के लिए प्रेम, घृणा उत्साह आदि। संचारी भाव विद्युत की तरह क्षण में अचानक प्रकट होता है और साथ ही लुप्त हो जाता है। रोष, हर्ष, भय आदि परिस्थिति के अनुसार संचारी भाव के रूप में प्रकट होते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार भावों के दो रूप हैं -

1. एमोशण और
2. सेंटिमेंट

एमोशण संचारी भाव का पर्यायवाची है और सेंटिमेंट स्थायीभाव का। सेंटिमेंट भावात्मक प्रवृत्ति है। स्थायीभाव (सेंटिमेंट) चिर काल तक वासना के रूप में स्थित रहता है, और आलंबन से संबंध रखता है। संचारी भाव दीर्घ काल तक मन में स्थिर नहीं रहते। रस गंगाधरकार ने लिखा है - स्थायीभाव जीवन के दीर्घ काल तक आश्रय (पाठक) के हृदय में स्थिर रहता है। उदाहरण के लिए प्रेम, भक्ति आदि।

डॉ. नगोन्द्र ने सेटिमेंट को मनोवृत्ति भावना कहा और एमोशण को मनोविकार कहा।

4. रस के विभिन्न अंग :-

भरत मुनि ने भावनाओं के तीन स्थर बताये - विभाव, अनुभाव और संचारी भाव। भावोत्तेजना का मूल कारण विभाव कहलाता है। विभाव के पुनः दो भेद माने जाते हैं।

1. आलंबन और
2. उद्दीपन

मानव हृदय में भावनाओं को जगाने वाली कोई वस्तु मा दृश्य की कल्पना आलंबन है (विषय वस्तु आलंबन है, वर्णित वस्तु आलंबन है)। उदाहरण के लिए सिंह को देखकर हमारे हृदय मे भय उत्पन्न होता है। यहाँ सिंह आलंबन है। यहाँ सिंह हमारे हृदय में भय का कारण बन जाता है। इसलिए वह उद्दीपन भी है। अगर सिंह कही पिंजडे में बन्धा हुआ होगा तो हमें किसी प्रकार का भय नहीं होता, और सिंह यहाँ उद्दीपन का काम नहीं करता।

उदा :-

उद्यान में रमणी का मनोहार रूप प्रिय के लिए उद्दीपन का काम करता है, लेकिन श्मशान भूमि में नहीं कयों कि उद्दीपन के लिए वातावरण का सानुकूल होना चाहिए।

जिस व्यक्ति के हृदय में आलंबन और उद्दीपन के प्रभाव से भाव की उत्पत्ति होती है, वह आश्रय कहलाता है। भावों के प्रभाव से आश्रय की शारीरिक और मानसिक अवस्था में होने वाला परिवर्तन 'अनुभाव' कहलाता है। हृदयगत भावों की व्यंजना अनुभावों के माध्यम से प्रकट होती है। एक ही स्थायीभाव के बीच - बीच में परिस्थितियों के कारण अनेक भावों का भी संचार होता है। उदाहरण के लिए प्रेम स्थायी भाव है। प्रेम में होने वाले संयोग से 'हर्ष' उत्पन्न होता है और वियोग के कारण 'दुख' उत्पन्न होता है। यहाँ 'हर्ष' और 'दुख' संचारी भाव हैं। संचारी भाव स्थायी भाव के विकास में सहायक होते हैं।

काव्यगत **स्थायी भाव की अनूभूति पाठक को होने** पर उसे 'रसानुभूति' कहते हैं। रसानुभूति ही रस - निपत्ति है।

5. भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद :-

भट्टलोल्लट ने भरत मुनि द्वारा प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या मौलिक रूप में की है। 'संयोग' का तात्पर्य उन्होंने संबंध या मेल बताया और निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति बताया। उनका कथन है - विभावों से रस की उत्पत्ति होती है, संचारियों से पुष्टि होती है, और अनुभावों से अभिव्यक्ति होती है। इस प्रक्रिया को समझने के लिए दही की लस्सी का उदाहरण लेले। दही, पानी, बर्फ और चीनी डाल कर मथकर लस्सी तैयार की जाती है। यहाँ दही मूल द्रव्य है। जिससे लस्सी तैयार होती है। पानी, बर्फ और चीनी लस्सी बनाने में पुष्टिकारक हैं। मंथन क्रिया से लस्सी तैयार हो जाती है। यहाँ दही - विभाव है। पानी बर्फ, चीनी आदि संचारी हैं। झाग - अनुभाव है। इस प्रकार भट्टलोल्लट ने रस निष्पत्ति को रस उत्पत्तिवाद कहा है।

यहाँ उत्पत्तिवाद का नाम भ्रामक है। निष्पत्ति के अन्तर्गत उत्पत्ति पुष्टि और अभिव्यक्ति को लोल्लट ने स्थान दिया है।

रस निष्पत्ति के सम्बन्ध मे एक समस्या है कि - रस की स्थिति नट के हृदय में होती है या दर्शक के हृदय में होती है। लोल्लट के अनुसार स्थायीभाव की स्थिति मूल पात्रों में ही होती है। नाटक अधिकांश ऐतिहासिक होते हैं। अतः मूल भाव या स्थायी भाव की स्थिति मूल पात्रों में ही रहती है। अभिनेता उन पात्रों का अनुकरण करते हैं। दर्शक या पाठक अभिनेताओं पर मूल पात्रों का आरोपण करके रस का अनुभव प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए राम और रावण का युद्ध देखकर दर्शकगण रसानुभव या रसानुभूति का अनुभव करते हैं।

अभिनेता कल्पना के द्वारा मूल पात्रों का अनुकरण करते हैं। वे मूल पात्रों का साक्षात्कार कवि के माध्यम से करते हैं। उदाहरण के लिए कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम नाटक में दुष्यन्त और शकुन्तला का अभिनय अभिनेता कल्पना तथा अनुभूति के द्वारा करते हैं। इस से पाठक या दर्शक भी रसानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। इस में रसानुभूति का कारण प्रत्यक्ष रूप नहीं बल्कि मिथ्या रूप विधान है। रजितपट पर हम नाटक का अनुभव करते हैं। वे भी सहज रूप न होकर मिथ्या रूप - विधान ही हैं। सडक पर हम वास्तविक भिक्षुक को देखकर घृणा प्रकट करते हैं और कभी चोर को घर में घुसते हुए देखकर शोर मचाते हैं। लेकिन रंगमंच पर भिखारी या चोर के अभिनय को देखकर हम रसानुभव की प्राप्ति करते हैं । रंगमंच के कुछ दृश्यों को छोटे बच्चे या नये दर्शक सत्य समझते हैं। उत्पत्ति, सृष्टि और अभिव्यक्ति की कल्पना करके भट्टलोल्लट ने रस निष्पत्ति को सहज और बोधगम्य बनाया।

6. शंकुक का अनुमितिवाद :-

श्री शंकुक 'निष्पति' का अर्थ अनुमिति तथा संयोग का अर्थ अनुमान मानते हैं। रस सामग्री - विभाव, अनुभाव और संचारी - के आधार पर पाठक या दर्शक रस का अनुमान करता है। इसलिए शंकुक ने निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति कहा।

यहाँ प्रश्न उठता है अनुमान बुद्धि की प्रक्रिया है और रस हृदरागत वस्तु है। तब दोनों का सामंजस्य कैसे हो सकता है!

न्याय शास्त्र के अनुसार ज्ञान के चार साधन माने जाते हैं -

1. प्रत्यक्ष प्रमाण
2. अनुमान
3. उपमान और
4. शब्द

यहाँ अनुमान के पुनः तीन प्रकार माने जाते हैं।

1. पूर्ववत
2. शेषवत और
3. सामान्यतो दृष्ट

प्रत्यक्ष कारण को देखकर अप्रत्यक्ष कार्य की कल्पना करना पूर्ववत अनुमान है।

उदाहरण - बादलों को देखकर वर्षा का ज्ञान होना।

प्रत्यक्ष कार्य को देखकर अप्रत्यक्ष कारण का अनुमान करना शेषवत है।

उदाहरण - किसी छात्र को अछे अंक प्राप्त करते देखकर उसके परिश्रम का अनुमान करना।

सामान्य अनुभव के आधार पर अप्रत्यक्ष कारण का अनुमान करना सामान्यतो दृष्ट है।

उदाहरण - प्रति वर्ष सावन मास में वर्षा होती है, तो इस साल भी होगी।

यहाँ विभाव पूर्ववत अनुमान है, अनुभाव शेषवत अनुमान है और संचारी भाव सामान्यतो दृष्ट अनुमान है। यह एक प्रकार से शंकुक कीअनुमिति को अनुभूति कह सक्ते हैं।

अनुमिति वाद के लिए 'चित्र - तुरंग - न्याय' उदाहरण के रूप में दे सकते हैं। कहीं दीवार पर घोडे के चित्र को देखकर हमें अनुमिति या अनुभूति होती है। अभिनेताओं के अभिनय में हम मूल पात्रों की अनुमिति या अनुभूति प्राप्त करते हैं।

7. भट्टनायक का भोगवाद :-

भोग का अर्थ है - अनुभव 'भट्टनायक ने संयोग का अर्थ भक्ति या योग बताया'। उनके अनुसार काव्य का रूप शब्दात्मक है। शब्दात्मक काव्य की तीन क्रियाएँ हैं -

1. अभिधा
2. भावकत्व (भावना) और
3. भोजकत्व (भोगना)

भावना के द्वारा हमारे हृदय को अनुभूति की प्राप्ति होती है । अभिधा के द्वारा शब्द के सामान्य अर्थ का ही बोध होता है । भावकत्व की प्रक्रिया के कारण प्रप्ति होने वाली अनुभूति साधारणीकरण कहलाती है। यहाँ पाठक और काव्य वस्तु दोनों का एकाकार हो जाता है।

उदाहरण के लिए पानी में नमक का घुल जाना। यहाँ काव्य वस्तु पानी है और नमक पाठक । जिस प्रकार पत्थर पानी में नहीं घुलता उसी प्रकार जो सहृदय पाठक नहीं होता वह काव्यानन्द नहीं प्राप्त कर सकता।

साधारणीकरण तापस का लक्षण है। रजोगुण और तमो गुण वाले इसकाअनुभव नहीं कर सकते। साधारणीकरण के कारण हमारी आत्मा से रजोगुण और तमोगुण लुप्त हो जाते हैं। साधारणीकरण से पाठक के हृदय में रसानुभव होता है और आनन्द की अनुभूति होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यही हृदय की मुक्तावस्था है।

8. अभिनवगुप्त की अभिव्यक्ति :-

अभिनवगुप्त केअनुसारे 'संयोग' का अर्थ - व्यंजना है, और निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति है। भाव हमारे हृदय में पहले से ही रहते हैं । काव्य हमारी भावाभिव्यक्ति का साधन मात्र है। हमारे हृदय में काव्य के कारण नये भावों की सृष्टि नहीं होती।

9. आधुनिक विद्वानों के मंतव्य :-

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने साधारणीकरण को योग की मधुमति भूमिका के समतुल्य बताया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साधारणीकरण ब्रह्मानन्द सहोदर है। डॉ. नगोन्द्र का कथन है - काव्य के माध्यम से पाठक को कवि की अनुभूति का साधारणीकरण होता है।

10. उपसंहार :-

रस सिद्धान्त का महत्त्व -

दर्शन, समाज, राजनीति, साहित्य आदि की दृष्टि से रस सिंद्धान्त महत्वपूर्ण है। अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार आत्मा परमात्मा के तीनों गुणों - सत, चित और आनन्द से युक्त है। काव्य और कलाओं द्वारा मानव में अन्तर्निहित आनन्द को जगृत किया जा सकता है। रस सिद्धान्त आनन्दानुभूति का विवरण देता है। मानव की आत्मा रसानुभूति के द्वारा माया का आवरण (प्राकृतिक लक्षण) पारकर आनन्द की प्राप्ति करती है। इसी को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बाताया है - **हृदय की मुक्तावस्था का नाम ही रस दशा है।** रस सिद्धान्त के अनुसार कलाओं का लक्ष्य कलाकार के आनन्द के साथ - साथ सामाजिक आनन्द भी है।

कविकर्म में तीन अवस्थाँयें होती हैं।

1. कवि द्वारा विषय की अनुभूति
2. कवि द्वारा अभिव्यक्ति और
3. पाठक के द्वारा रसास्वादन

रस सिद्धान्त जीवन के सभी पक्षों को काव्य में स्थान देता है। काव्य का सर्व प्रमुख तत्त्व - भाव है। भावों के कारण ही काव्य, काव्य का रूप धारण करता है। रस सिद्धान्त भाव - तत्त्व की व्याख्या करता है।

जब तक काव्य या साहित्य का संबन्ध मानवीय भावनाओं से पुष्ट रहेगा तब तक रस सिद्धान्त का महत्त्व परिपुष्ट रहेगा।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ : 2

अलंकार संप्रदाय और उसके सिद्धान्त

प्र.2. अलंकार संप्रदाय क्या है ? उसके सिद्धान्तों को समझाइए।

रुपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. कुछ आचार्यों के मत - अलंकार संप्रदाय की परंपरा
3. अलंकार की परिभाषा
4. अलंकारों का वर्गीकरण
5. अलंकारों के भेद
6. अलंकारों का महत्त्व
7. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

अलंकार का शब्दिक अर्थ है - सुशोभित करने वाला या जिस से सुशोभित होता है। काव्य शास्त्र में अलंकारों का महत्त्व पूर्ण स्थान है। अलंकार सौन्दर्य के पर्यायवाची के रूप में भी ग्रहण किया गया है। संस्कृत में विशिष्ट कथन शैली को अलंकार कहते हैं।

2. कुछ आचार्यों के मत - अलंकार संप्रदाय की परंपरा :-

भारतीय काव्य संप्रदायों में रस के बाद अलंकार संप्रदाय ही आता है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में उपमा, रूपक, यमक, दीपक आदि अलंकारों की विवेचना की है। छठी शताब्दी में भामह ने काव्यालंकार ग्रन्थ के द्वारा अलंकार संप्रदाय की स्थापना की। भामह ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना। वैसे तो अलंकार संप्रदाय के बहुत से आचार्य हुए हैं। उन में से कुछ आचार्य इस प्रकार हैं।

	आचार्य	ग्रन्थ	शती
1.	भामह	काव्यालंकार	छटवीं
2.	दण्डी	काव्यादर्श	सातवीं
3.	वामन	काव्यालंकार सूत्र	आठवीं
4.	उट्भट	काव्यालंकार सार संग्रह	आठवीं
5.	रुद्रट	काव्यालंकार	नवीं
6.	कुन्तक	वक्रोक्ति जीवित	ग्यारहवीं
7.	रुय्यक	अलंकारसर्वस्व	बारहवीं
8.	जयदेव	चन्द्रालोक	तेरहवीं

हिन्दी रीतिकाल में अनेक अलंकारवादी कवि हुए। लेकिन उनके ग्रन्थ एक प्रकार संस्कृत ग्रन्थों के ही छायानुवाद हैं।

3. अलंकार की परिभाषाः-

अलंकार का सामान्य अर्थ है - जिस प्रकार अभूषण शरीर की शोभा को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार काव्य में अलंकार अर्थ ग्रहण में शोभा बदाते हैं। अलंकार कदापि शरीर के अंग नहीं बन सकते। उसी प्रकार काव्य में भी अलंकार मूल विषय वस्तु के अंग नहीं हो सकते। अलंकार काव्य शैली से सम्बन्धित तत्त्व है।

कुछ आचार्यों के मत -

1. भामह ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना है। जिस प्रकार कान्ता - वनिता का मुख भूषणों से रहित होने पर पूर्ण रूप से शोभित नहीं होता, उसी प्रकार अलंकार रहित काव्य शोभा विहीन होता है।
2. दण्डी ने अलंकार को काव्य का सर्वस्व माना है। इन्होंने गुण को भी अलंकार माना है। और रस, भाव आदि को भी अलंकार के अन्तर्गत माना है।
3. आचार्य वामन ने अलंकार को समस्त काव्य सौन्दर्य का परिचायक माना है। उनके अनुसार गुणयुक्त अलंकारों से साधारणतः युक्त तथा दोष रहित शब्द और अर्थ ही काव्य है। मम्मट् ने भी इसी काव्य परिभाषा को अपनाया।
4. जयदेव के अनुसार अलंकार शून्य शब्दार्थ से भी काव्य बन सक्ता है।
5. रुद्रट ने रस का भी विवेचन किया है। कुन्तक ने अलंकार वादी विचार धारा को आगे बढ़ाया और एक नवीन दिशा प्रधान की।

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा अलंकार काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना जाता है। विविध आचार्यों ने विविध उक्तियों द्वारा अलंकार स्वरूप का स्पष्टीकरण किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं - "विषय को पूर्णतया समझने के लिए कभी - कभी बात को घुमा फिराकर कहना पडता है। इस तरह भिन्न - भिन्न विधान और कथन के ढंग - अलंकार कहलाते हैं।

4. अलंकारों का वर्गीकरण :-

अलंकारों के शताधिक भेद किये गये हैं। उन में से पुनः समन्वय करके सात भेद वर्गीकृत किये गये हैं।

1. सादृश्य गर्भ - इस में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार आते हैं।
2. विरोध मूल - इस में विरोध, विभावना और विशेषोक्ति अलंकार आते हैं।
3. श्रृंखला वद्ध - इस में कारण वाला, एकावली आदि अलंकार आते हैं।
4. तर्क न्यायमूल - इस में तर्क और न्याय द्वारा उक्ति को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
5. वाक्य न्यायमूल - तर्कपूर्ण सामान्य वाक्य के द्वारा वस्तु को प्रभावशाली बनाया जाता है।
6. लोक न्यायमूल - इस के द्वारा लोक व्यवहार को तत्त्वों द्वारा उक्ति में प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।
7. गूढ़ार्थ - प्रतीतिमूल - इस में व्यंजना शक्ति का मूल रहता है।

उपर्युक्त अलंकारों का वर्गीकरण पूर्णतः संतोष जनक नहीं है। विविध आचार्य इस वर्गीकरण को असंगत मानते हैं।

5. अलंकारों के भेदः-

अलंकारों के प्राधानतया दो भेद है।

1. शब्दालंकार और
2. अर्थालंकार

1. शब्दालंकार :- शब्दालंकारों में अलंकार का सौन्दर्य शब्द विशेष की ध्वनि और अर्थ पर आश्रित होता है। उस शब्द को बदल देने पर अलंकार की शोभा नहीं रहती। शब्दालंकारों के पुनः उपभेद है। अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष आदि। अनुप्रास का प्रभाव प्रधानतया शब्द कीआवृत्ति पर आधारित होता है। कुछ उदाहरण देखें -

1. यमक - कनक - कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय
2. अनुप्रास - होरत - होरत हे सखी रह्या कबीर हिराई
3. अनुप्रास - रस सिंगार मज्जन किये
4. वक्रोक्ति - मैने कहा "प्रिये जाओ मत, बैठों।" वह भोली समझी 'जाओ, मत बैठो।'

(2)

2. **अर्थालकार :-** अर्थालकारों का सबंन्ध पूरे वाक्य से होता है। इनको विशेषतः सात वर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. **उपमा :-** यह अधिक पहन्त्वपूर्ण अलंकार है। उपमा में वस्तु का सादृश्य किसी अन्य वस्तु से बताया जाता है। इस के पुनः चार अंग माने जाते हैं। (1) उपमेय - अर्थात वर्ण्य वस्तु (2) उपमान - जिस से साइश्य बताया जाता है (3) धर्म - दोनों वस्तुओं का सामान्य गुण (4) वाचक - इस से दोनों की तुलना का बोध होता है। जहाँ ये चार अंग पूर्ण रूप से होते हैं , उसे पूर्णोपमा अलंकार कहते हैं।

उदाहरण - तापस - बाला सी गंगा कल

ससि मुख से दीपित मृद कर - तल

लहरें उर पर कोमल कुन्तल

यहाँ गंगा - उपमेय है। तापस बाला - उपमान है। कल (सौन्दर्य) - सामान्य गुण धर्म हैं। और स्त्री - वाचक शब्द है।

2. **रूपक :-** उपमान, उपमेय का अभेदत्व बताना ही रूपक है।

उदाहरण :-

उम्बर पन घट में

डुबो रही तारा घट

उषानागरी

3. **उत्प्रेक्षा :-** इस में उपमान की कल्पना मात्र होती है।

उदाहरण :- उस का मुख मानो चान्द है।

वह लडका पेडों पर सदा खेलता रहता है, मानो वह बन्दर है।

उत्प्रेक्षा के तीन भेद हैं।

1. वस्तूत्प्रेक्षा
2. होतूत्प्रेक्षा
3. फलोत्प्रेक्षा

4. **अतिशयोक्ति अलंकार :-** अतिशयोक्ति में उपमेय का अतिशय वर्णन होता है। वास्तव में विषय बहुत दूर चले जाते हैं।

"इति आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ।
चढ़ी हिडोरै सै रहै, लगी उसासनु साथ।"

अतिशयोक्ति के पुनः चार भेद हैं।

1. रूपकातिशयोक्ति
2. भेदकातिशयोक्ति
3. असंबन्धातिशयोक्ति
4. कारणातिशयोक्ति

5. **दीपक अलंकार :-** दीपक अलंकार में उपमेय और उपमान दोनों के एक से गुणों का आख्यान होता है। (दोनों एक से लगते हैं)

उदाहरण - काहू के केहू घटाओ घटै नाहि,
सागर और गुण आगर पानी

6. **व्यकिरेक अलंकार :-** उपमेय को उपमान से भी अधिक वताना व्यतिरेक अलंकार है।

उदाहरण :- स्वर्ग की तुलना उचित ही है,
किन्तु वहाँ सुरसरिता कहाँ ? सरयू कहाँ !

7. **समासोक्ति :-** प्रस्तुत वर्णन के द्वारा अप्रस्तुत वर्णन ध्वनित होता है।

उदाहरण :- जग के दुख दैन्य शयन पर यह रुगणा बाला।
अरे कब से जाग रही वह आँसू की नीरवमाला।

8. **व्याज स्तुति :-** स्तुति के रूप में निन्दा और निन्दा के रूप में स्तुति होती है।

उदाहरण :- आप तो बडे विद्वान हैं ।
मूर्ख भी आप से डरता है।

9. **विरोधाभास :-** इस में विरोध का आभास होता है।

उदाहरण :- तुम मांस हीन, तुम शक्ति हीन, तुम अस्थिशेष !

10. **काव्य लिंग :-** कोई कारण बताकर बात सिद्ध की जाती है।

उदाहरण :- श्याम गौर किमि कहहु बखानी।

गिरा अनैन नैन बिनु बानी ॥

11. **अनन्वय अलंकार :-** किसी विषय को बताने के लिए कोई उपमान प्राप्त नहीं होता, वह अनन्वय अलंकार है।

उदाहरण :- गगनं गगनाकारम् - सागरः सागरोपमः।

राम रावणयोर्युध्दं रामरावणयोरिव ॥

6. अलंकारों का महत्व :-

साहित्य समाज के साथ चलता रहता है। वह अनेक सामाजिक तथ्यों का ग्रहण करके पुनः समाज का दिग्दर्शन करता है। अलंकार साहित्य को तीव्र बनाते हैं, और साहित्यकार की भावना त्वरित गति से और सुलभ रीति से पाठक के हृदय में पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए किसी दुष्ट या खलपात्र का वर्णन अनेक पृष्टों में करने के बदले 'वह सच्चा रावण है ।' कहकर विषय को बोधगम्य कर सकते हैं। इसी प्रकार 'तुम को चट्नी - चट्नी वनाऊँगा अथवा तुम्हें आसमान में फेंक दूँगा।' जैसे वाक्य पाठक की भावना की प्रखरता व्यक्त करते हैं।

अलंकारों में भावना तो तीव्रतर बनाने की शक्ति होती है। अलंकार रहित काव्य कदापि स्वीकार नहीं हो सकता। इसीलिए जयदेव का कथन है।

'अंगीकराति यह काव्यं शब्दार्थावनलंकृती'

अलंकार रस पुष्टि में भी सहायक होते हैं। अलंकारों से काव्य में शोभा की वृद्धि होती है। अलंकारों का प्रयोग औचित्य पर होना चाहिए। शब्दालंकार से पाठक का मन अनुरंजित होना चाहिए। उनकी आवृत्ति से मन पल्लवित होना चाहिए।

उदाहरण :-

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन चातक से

श्रृंखला मूलक अलंकारों में क्रम का सौन्दर्य होता है।

7. उपसंहार :-

अलंकारों का निश्चित रूप से काव्य में महत्त्व है। भावों के स्पष्टीकरण में अलंकारों का प्रभाव होता है। भावसंपुटीकरण के साथ अलंकारों का प्रयोग अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अलंकार चाहे शब्दालंकार हो या अर्थालकार, कवि की भावना स्पष्ट करने में सहायक होना चाहिए। अलंकार भाषा की शकति को भी बढ़ाते हैं और काव्य के सौन्दर्य में शोभा लाते हैं। व्यापक अर्थ में अलंकार अनुभूति की तीव्रता को बढ़ाते हैं और भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं।

जदपि सुजाति सुलच्छनि सुवरन सरस सुवृत्त।

भूषन बिनु न बिराजहि कविता वनिता मित्ता ॥

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 3

रीति संप्रदाय

प्र.3. रीति संप्रदाय क्या है ? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. रीति संप्रदाय की परंपरा
3. रीति संप्रदाय - काव्य
4. रीति के प्रधान तत्त्व
5. रीति के प्रकार
6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

रीति का अर्थ है - मार्ग, पथ, वीथि, गति, प्रस्थान आदि। ये सारे अर्थ रीति के पर्यायवाची हैं। काव्य शास्त्र में रीति का प्रयोग दो अर्थों में होता है।

1. काव्य रचना की सामान्य पद्धति और
2. संस्कृत का एक संप्रदाय विशेष

आचार्य वामन रीति संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं।

2. रीति संप्रदाय की परंपरा :-

आचार्य वामन के पूर्व भी रीति की परंपरा प्रचलित थी। आचार्य भरतमुनि ने रीति से मिलते जुलते शब्द प्रवृत्ति कहा है। स्थानीय विशेषताओं के कारण प्रवृत्ति के पुनः चार भाग माने गये हैं।

1. आवन्ती

   दाक्षिणात्या

3. ओड्रमागधी

4. पाँचाली

भामह ने अपने काव्यालंकार में वैदर्भ और गौड नाम से दो मार्गों का उल्लेख किया है। ये दोनों मार्ग रीति के पर्यायवाची माने जात हैं। दण्डी ने भी इन्हीं मार्गों की व्याख्या की है। वैदर्भ में श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थ - व्यक्ति आदि दस गुण होते हैं। गौड में या गौड मार्ग में सारे गुण वैदर्भ के विरुद्ध होते हैं।

वामन के अनुसार विशेष प्रकार की शब्द रचना रीति है - ''विशिष्ट पद रचना रीतिः''। वामन काव्य का आधार रीति को और रीति का आधार गुण को मानते है। अतः गुण ही काव्य का सर्वोत्कृष्ट तत्त्व माना जाता है। वामन ने वैदर्भी और गौडी के अतिरिकत पाँचाली की और कल्पना की। रुद्रट, राजशेखर, कुंत्तक आदि आचार्यों ने अपना - अपना मत प्रकट किया। भोजराज ने अवन्तिका और मागधी की सृष्टि की। आनन्द वर्धन ने रीति का प्रयोग वकता, कथ्य, विषय और रस के आधार पर परामर्श किया।

हिन्दी के अनेक कवि - आचार्यों ने रीति का उल्लेख किया है। केशव, चिन्तामणि, कुलपति, देव और दास ने भी रीति का उल्लेख अत्यन्त लघु रूप में बताया।

3. रीति संप्रदाय - काव्य :-

वामन ने काव्यालंकार सूत्र में अपने विचार व्यक्त किये। भामह के अनुसार शब्द और अर्थ मिलकर काव्य होता है - 'शब्दार्थौ साहितौ काव्यं'। काव्य रचना की प्रतिष्ठा यश की प्राप्ति में देखी जाती है। वामन के अनुसार

1. काव्य की रचना गुणों और अलंकारों से परिष्कृत भाषा में होनी चाहिए।
2. गुणों और अलंकारों से काव्य में सौन्दर्य की उत्पत्ति होती है।
3. सौन्दर्य के कारण ही पाठक काव्य को पसन्द करता है।

4. रीति के प्रधान तत्त्व :-

वामन का दृष्टिकोण विशुद्ध सौन्दर्यवादी था। गुणों के आधार पर काव्य सौन्दर्य की सृष्टि हो सकती है। उन्होंने गुण - दोष और अलंकारों का निरूपण विस्तार से किया है।

क. गुण :- गुणों को सर्वाधिक महत्व प्रदान करने का श्रेय आचार्य वामन को ही है। पहले ही आचार्य भरत ने इन पर चर्चा की थी। काव्य शैली को संमृद्ध करने वाले तत्त्व को गुण कहते हैं। 1. श्लेष 2. प्रसाद 3. समता 4. माधुर्य 5. समाधि 6. ओज 7. पद सौकुमार्य 8. आर्थ व्यक्ति 9. उदारता एवं 10. कान्ति - ये गुण माने

जाते हैं। आगे चलकर दण्डि ने भी इन्ही लक्षणों का समर्थन किया। उनके विचार से काव्य में शोभा कारक लक्षण गुण कहलाते हैं। गुणों के पुनः दो भेद बताये जाते हैं। 1. शब्दगुण और 2. अर्थगुण।

1. शब्दगुण - ओज, प्रसाद, स्लेष, समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थ व्यक्ति और कान्ति गुण हैं ।

2. अर्थगुण - अर्थगुण की प्रौढ़ता को ओज गुण माना जाता है।

ख. **दोष :-** गुण और दोषों के अन्तर अलंकारों का विवरण आता है। काव्य में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। अलंकारों से काव्य में सौन्दर्य के दोषों को दूर कर सकते हैं। शब्दालंकार और अर्थालकार काव्य की पुष्टि में साहायक होते हैं।

5. रीति के प्रकार :-

आचार्य वामन के अनुसार रीति के तीन भेद माने जाते हैं।

1. वैदर्भी
2. गौडी और
3. पाँचाली

वैदर्भी में सारे गुणओं का समावेश होता है। गौडी में केवल ओज और कान्ति दो गुण मात्र होते हैं। पाँचली में माधुर्य और सौकुमार्य गुण होते हैं। जिन - जिन देशों के लोगों ने जिस - जिस प्रकार की रचना शैली का आविष्कार किया है, उन्ही के आधार पर रीति का नामकरण किया गया है। देशों का काव्य शैलियों से वैसे तो सीधा कोई संबन्ध नहीं। लेकिन वामन ने अपने मत का समर्थन करने का प्रयत्न किया है। कमशः वैदर्भी के स्थान पर सुकुमार, गौडी के स्थान पर विचित्र और पाँचाली के स्थान पर मध्यम मार्ग की कल्पना की गयी। रस संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय और अलंकार संप्रदाय की तुलना में रीति संप्रदाय का महत्व नगण्य है। रीति एक प्रकार का शब्द क्रम है। शब्द क्रम परिपूर्ण सौन्दर्य नहीं है। इसलिए रीति संप्रदाय अन्य संप्रदाय के सामने निम्न स्तर का माना जाता है।

6. उपसंहारः-

रीति तत्त्व सौन्दर्य का साधन मात्र है। वस्तुतः वामन का गुण स्मबन्धी दृष्टिकोण पर्याप्त असंगत अस्पष्ट एवं आव्यावहारिक है। वामन ने एक नये संप्रदाय के प्रवर्तन का साहस किया। रीति संप्रदाय काव्य की आत्मा भले ही न बनजाय, किन्तु काव्य से उसका कोई - न - कोई समबन्ध तो है ही, शैली पक्ष में वामन की महान देन है । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ''वाणी के बिना अर्थ गूँगा है। शैली के अभाव में भाव उस कोकिल के समान असहाय है , जिसे विधाता ने हृदय का मिठास देकर भी रसना नहीं दी।'' रीतिवाद ने शैली तत्त्व पर जोर देकर काव्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण उपकार किया है ।

Lesson Writer
डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 4

ध्वनि संप्रदाय

प्र.4. ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. शब्द शक्तियाँ
3. ध्वनि पर आपत्तियाँ
4. वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में अन्तर
5. ध्वनि और काव्य
6. ध्वनि के भेद
7. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

भारतीय काव्य शास्त्र में ध्वनि संप्रदाय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके प्रारंभ में आचार्य आनन्द वर्धन ने स्वयं कहा था 'काव्यस्यात्मा ध्वनि इति'। ध्वनि की परंपरा आचार्य के अनुसार उन से पहले भी रही है। 'ध्वन्यालोक' ध्वनि संप्रदाय का प्रथम ग्रन्थ होने के कारण आनन्द वर्धन ही इस परंपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस संप्रदाय के अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि है। ध्वनि संप्रदाय को पूर्णतः (पूर्ण रूप से) समझने के लिए शब्द शक्ति ज्ञान की आवश्यकता है।

जहाँ व्यंग्यार्थ प्रमुख होकर वाच्यार्थ गौण हता है, वही ध्वनि मानी जाती है। वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अधिक सुन्दर होने पर ही ध्वनि का अस्तिव माना जाता है। कभी व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की तुलना में कम सुन्दर हो और वह वाच्यार्थ का अंग बन जाता हो, वह गुणीभूत व्यंग्य कहलाता है। व्यंग्यार्थ स्पष्ट न होने पर उसे चित्रकाव्य कहते हैं। इस प्रकार ध्वनि संप्रदाय के अनुसार काव्य की तीन श्रेणियाँ हैं।

1. ध्वनि - उत्तम
2. गुणीभूत - मध्यम और
3. चित्र - अधम

2. शब्द शक्तियाँ :-

भारतीय शास्त्रों में भाषा का अर्थ शक्ति या वृत्ति के नाम से बताया जाता है। शब्द वैसे तो परा, पश्यन्ति, मध्यमा तथा वैखरी - हठयोग के अनुसार बताया गया है। लेकिन शक्ति के अनुसार इस के छः। सात भेद बताये जाते हैं -

अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, तात्पर्य, रसना, भावना, भोग आदि। इन में से प्रथम - तीन - अथिधा, लक्षण, व्यंजना प्रथम मानी जाती हैं।

क. अभिधा :- इस से सीधा सर्वप्रचलित अर्थ निकलता है। उच्चारण मात्र से शब्द का सीधा अर्थ सुनने वाले की समझ में आता है। उदाहरण के लिए -

यह मकान है । चाँद चान्दिनी देता है। पानी प्यास बुझाता है।

प्रसिद्ध भारतीय नैयाइक गदाधर भट्टाचार्य के अनुसार सामान्यतया शब्दों का अर्थ भगवान से निश्चित किया जाता है।पारिभाषिक शब्द शास्त्रकारों से बने हुये हैं। यह भट्टाचार्य की भावना मात्र है, क्यों कि शब्दों की उत्पत्ति मानव से ही हुई है। शब्द भाषा का एक अंग है। संस्कृति तथा सभ्यता के बढ़ते - बढ़ते समाज में आवश्यकता के अनुसार शब्दों की उत्पत्ति हुई है। सीधा अर्थ देना ही अभिधा है। उदाहरण - घंटी ठन - ठन बजती है।

ख. लक्षणा :-

मुख्यार्थ में बाधा होने पर किसी रुढ़ि अर्थ के द्वारा मुख्यार्थ से संबन्धित अन्य अर्थ बताना लक्षणा है।

किसी को हम मूर्ख सीधा नहीं कह सकते। इसलिए कभी परोक्ष में उसकी निन्दा करते हुए हम कहते हैं - गोपाल गधा है। किसी दुष्ट को हम सीधा दुष्ट या क्रूर नहीं कह सकते। अन्योपदेश में हम उसकी क्रूरता व्यकत कर सकते हैं - गोपाल सचमुच रावण है। लक्षणा में गधे को सामान्यतः मूर्ख समझा जाता है। व्यावहारिक भाषा में हम किसी का आदर करते हुए कहते हैं -

आप हमारी **गरीब कुटिया** में पधारे है।

मैं आप का **चरण सेवक** हूँ ।

आप का **अमीर खाना** कहाँ है।

आदि वाक्यों में नित - प्रति लक्षणा शक्ति व्यक्त होती रहती है ।

ग. **व्यंजना :-** व्यंजना शक्ति काव्य शास्त्र में एक प्रकार का अंजन है । व्यंजना में गूढ़ार्थ का बोध होता है। कभी - कभी वह शब्दों में ही निहित होता है। कभी काव्यसंगोष्ठी में एक विद्वान दूसरे को अर्थ कवि कहता है। सुनने वाले या प्रेक्षक या स्त्रोता उसे अर्ध कवि के रूप में ग्रहण करके हँस पडते हैं। दूसरा विद्वान पहले विद्वान का व्यंग्य समझ जाता है, और उसका खण्डन करते हुए उसे वह पूर्ण कवि कहता है। पूर्ण का अर्थ शून्य '0' भी है। प्रथम कवि वाल्मीकि के दवारा उच्चरित मानिषाद प्रतिष्ठां .....श्लोक का वाच्यार्थ क्रौञ्च पक्षी को मारने वाले व्याध को शाप देना है।

उस में उल्लसित रामायणार्थ व्यंग्य है। यहीं से 'शोकः स्लोकत्व मागतः' उक्ति प्रचलित हुई है।

3. ध्वनि पर आपत्तियाँ :-

ध्वनि सिद्धान्त के कुछ विरोधी आचार्यों ने आपत्तियाँ उठायी हैं । वे इस प्रकार है -

1. व्यंजना और अभिधा में कोई अधिक अन्तर नहीं है।
2. व्यंजना लक्षणा से अलग नहीं है।
3. व्यंग्यार्थ अनुमान से ग्रहण होता है। इसलिए व्यंजना को ध्वनि के अन्तर्गत मानने की आवश्यकता नहीं।
4. ध्वनि का समन्वय, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलकारों से किया जा सकता है।

कुछ आचार्य अभिधा का ही समर्थन करते हैं जो अभिधावादी कहलाते हैं। इनके पाँच वर्ग हैं।

1. अभिहितान्वयवादी
2. अन्विताभिवादी
3. निमित्तवादी
4. दीर्घतराभिधा व्यापारवादी और
5. तात्पर्यवादी

इन तर्कों में भट्टलोल्लट की भी एक मान्यता है। उनका कथन है - व्यंजना में भिन्नार्थ इसलिए अवगत होता है कयों कि वक्ता ही उसे अपने शब्दों द्वारा भिन्नार्थ में प्रयोग करता है। विषय का अुशीलन करने पर ऐसा लगता है कि - दोनों में अधिक अन्तर नहीं 'उदाहरण के लिए सेनापति को शत्रु का बाण लगता है। सेनापति के घायल होने पर सारी सेना भाग जाती है। तीर लगना और भाग जाना दोनों एक नहीं' लेकिन एक का प्रभाव दूसरे पर हो सकता है।

व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक प्रभावशाली होता है। उदाहरण के लिए 'नहि पराग नहि मधुर मधु' बिहारी के दोहे में व्यंग्यार्थ का प्रभाव व्यक्त होता है। वह प्रभाव वाच्यार्थ में उतना स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक नहीं होता। व्यंग्यार्थ वस्तुतः तात्पर्य ही है।

लेकिन किसी के प्रति कहा जाने वाला वाच्यार्थ ही कभी - कभी व्यंग्यार्थ में बदल जाता है। असल में तो वाच्यार्थ ही मुख्यार्थ है। उदाहरण के लिए अन्न वाच्यार्थ है । 'अन्य विविध व्यंजन, लक्षण और व्यंजना कहे जा सकते हैं' इसीलिए 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु' वस्तुतः व्यंजना होने पर भी अलंकारवादी उसे अन्योक्ति बताते हैं। लेकिन हमारे विचार से वह पूर्णतया व्यंग्य ही है।

4. वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में अन्तर :-

वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में कुछ अन्तर इस प्रकार हैं।

1. काच्यार्थ सब लोग समझ सकते हैं। व्यंगयार्थ कुछ ही व्यक्ति समझ सकते हैं।
2. वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में बहुत अन्तर होता है। उदाहरण के लिए - 'दिन - ब - दिन आप दुबले बनते जा रहे' यह वाच्यार्थ कभी किसी का व्यंग्यार्थ बनकर अर्थ उल्टा बन जाता है - 'आप दिन - व - दिन मोटे बनते जा रहे हैं।'
3. वाच्यार्थ में एक ही अर्थ होता है, जहाँ व्यंग्यार्थ परिस्थितिं के अनुसार अनेक होते हैं।
4. वाच्यार्थ केवल शब्दज्ञान पर आधारित है। जहाँ व्यंग्यार्थ प्रतिभा एवं बुद्धि पर आधारित है।
5. वाच्यार्थ का उसी समय बोध होता है। कभी - कभी व्यंग्यार्थ समझने में समय लगता है।
6. वाच्यार्थ केवल शब्दों पर आश्रित है जब कि व्यंग्यार्थ शब्द, अर्थ, वक्ता के विधान और परिस्थिति पर आधारित है।

इ. ध्वनि और काव्य :- काव्य की रमणीयता वस्तुतः वाच्यार्थ में होती है। उदाहरण के लिए - साकेत में ऊर्मिला के वचन देखिए -

"आप अवधि बन सकूं कहि तो क्या कुछ देर लगाऊँ।
मैं अपने को आप मिटाकर जाकर उनको लाऊँ॥"

यहाँ सारा रस, सारी रमणीयता वाच्यार्थ में ही निहित है।

आचार्य रामचन्द्र शुकल वाच्यार्थ का समर्थन करते हैं, तो डॉ. नगेन्द्र व्यंग्य का। इस प्रकार वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के संबन्ध में विविध आचार्यों का मतभेद है।

वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में काव्य का महत्व किस में रहता है ? यह प्रश्न ऐसा है कि - मानव के प्राण सिर में रहते हैं या धड में रहते हैं। शरीर में दोनों भागों का अपना - अपना महत्त्व होता है। काव्य में रस योजना तभी हो सकती है जब वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ में समन्वित हो और व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ में समन्वित हो। वैसे तो ध्वनि में व्यंग्यार्थ की ही प्रसुखता होती है। कभी व्यंग्यार्थ का अनुवाद किया जाय तो वह वाच्यार्थ में परिवर्तित होता है। कभी किसी उक्ति का सीधा अनुवाद वाच्यार्थ कहलाता है। व्यंग्यार्थ नुकीला होता है, और कवि की प्रतिभा

व्यक्त होती है। व्यंग्यार्थ मे वाच्यार्थ का सूचित होना आवश्यक है। अतः वाच्यार्थ की पुष्टि में व्यंग्यार्थ हो और व्यंग्यार्थ की पुष्टि में वाच्यार्थ हो। अतः हम एक निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं - 'व्यंग्यार्थ समन्वित वाच्यार्थ' का नाम ही ध्वनि है।

6. ध्वनि के भेद :-

ध्वनि संप्रदाय के दो भेद हैं।

क. अभिधा मूला और

ख. लक्षणा मूला

क. अभिधा मूला :- अभिधा मूला में वाच्यार्थ से ही व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है और लक्षणा मूला में लक्षयार्थ से व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है। अभिधा मूला के मुनः दो उपभेद हैं।

1. असंलक्ष्यक्रम ध्वनि और
2. संलक्ष्यक्रम ध्वनि

वाच्यार्थ के साथ - साथ व्यंग्यार्थ ध्वनित होना असंलक्ष्य ध्वनि हैं।

उदाहरण :- कभी सब्जी की महंगाई होने पर घर का मालिक सब्जी कम खरीदकर ले आता है। घर में पूछा जाता है कि सब्जी क्यों कम लाये। समाधान के रूप में वह कह देता है - 'एक रूपये में पाँच किलो टमाटर बिक रहे हैं इसलिए कम लाना पडा।'

संलक्ष्य क्रम ध्वनि में वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का बोध एक ही क्रम में होता है। पहले वाच्यार्थ समझ में आता है। उस के कुछ क्षण बाद व्यंग्यार्थ समझ में आता है।

उदाहरण :-

माली आवत देखि के कलियाँ करी पुकार।

फूली फूली चुनलिये काल्ही हमारी बार॥

इस में वाच्यार्थ है - माली के आते हुए देखकर कलियाँ पुकार कर कहती है, "माली आज खिले हुए फूलों को चुन - चुन कर ले जायेगा। कल हम खिल जायेंगी और मालि हम को भी चुन - चुन कर ले जायेगा।"

यह कबीरदास का दोहा है। कबीर यहाँ प्रतीकात्मक योजना में संदेश देते हैं। मानव का जीवन शाश्वत नहीं है, मृत्यु लोगें को चुन - चुन कर लें जाती है या ग्रस लेती है। कुछ लोगों को आज ग्रस लेती है, तो और कुछ लोगों को कल। यहाँ समय का भेद मात्र हैं। यह दोहा संलक्ष्यक्रम ध्वनि के अन्तर्गत आता है।

ख. **लक्षणा मूला** :- लक्षणा मूला ध्वनि के भी दो भेद हैं।

1. अर्थान्तर संक्रमित वाच्य
2. अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य में वाच्यार्थ का अर्थ अलग हो जाता है। दूसरा अर्थ संक्रमित होने पर यह अर्थान्तर संक्रमित वाच्य कहलाता है।

उदाहरण :- राखी सजी, पर कलाई नहीं है। यहाँ कलाई का व्यंगयार्थ है राखी वाँधने के लिए भाई का हाथ नहीं मिला।

वाच्यार्थ का विलकुल तिरस्कार हो जाना अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य कहलाता है। वाच्यार्थ का एक शब्द भी इस में प्रचलित नहीं होता।

उदाहरण :- पेट में चूहे दौड रहे हैं।

अभिधा मूला और लक्षणा मूला में अनेक उपभेद भी बताये जाते हैं। ध्वनि के पुनः तीन भेद बताये जाते हैं।

1. रस ध्वनि
2. अलंकार ध्वनि और
3. वस्तु ध्वनि

7. उपसंहार :-

साहत्यि के विविध संप्रदाय हैं, जिन में ध्वनि एक है। ध्वनि संप्रदाय के अनुसार रस ही प्रधान है। ध्वनि रस पुष्टि में एक साधन मात्र है। रस का संबन्ध काव्य के आधारभूत तत्त्वों से है। यहाँ ध्वनि केवल एक अभिव्यक्ति प्रणाली है। ध्वनि सप्रदाय में रसध्वनि, अलंकारध्वनि और भेद भी बताये जाते हैं। ध्वनि संप्रदाय के आचार्य कभी ध्वनि को ही काव्य की आत्मा मानते हैं, और फिर रस को भी काव्य की आत्मा मानते हैं। विविध संप्रदाय काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। ध्वनि के आचार्य मानते हैं, 'ध्वन्यात्मा काव्यस्य'।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 5

वक्रोक्ति संप्रदाय

प्र.5. वक्रोक्ति संप्रदाय क्या है ? विवेचन कीजिए।

रुपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. वक्रोक्ति संप्रदय तथा काव्य
3. वक्रोक्ति के भेद
4. वक्रोक्ति और अभिव्यंजनावाद
5. उपसंहार

1. प्रस्तावना:-

जीवन में वक्रता की भी विशेषता होती है। साहित्य जीवन तथा समाज का प्रतिरूप है। वक्रोक्ति संप्रदाय साहित्य सिद्धान्तों में एक है। वक्रोक्ति का अर्थ है - वक्रतापूर्ण शब्द । वक्रता के विविध रूप है - टेढ़ापन, असामान्य, विचित्र आदि । आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने 'उक्ति' को काव्य की आत्मा माना हैं। अपने सिद्धान्त की स्थापना में उन्होंने 'वक्रोक्ति जीवितम' ग्रन्थ की रचना की।

यद्यपि कुन्तक वक्रोक्ति संप्रदायं के प्रवर्तक माने जाते हैं, वस्तुतः वक्रोक्ति संप्रदाय भामह से हीं प्रारंभ हुआ था। वक्रोक्ति को आचार्य भामह ने अलंकारों की जननी माना है। इस में अर्थ वक्रोक्ति और शब्द वक्रोक्ति दो रूप माने जाते हैं। दण्डि, वामन, रूद्रट आदि आचार्यों ने वक्रोक्ति का विवेचन किया है। आचार्य आनन्दवर्धन ने वक्रक्ति को अधिक सम्मान दिया। कुछ आचार्यों के अनुसार वक्रोक्ति के बिना अलंकार नहीं है। इस संप्रदाय के अनुसार वक्रोक्ति काव्य की आत्मा है।

2. वक्रोक्ति संप्रदाय तथा काव्य :-

'कवि - कर्म' काव्य कहलाता है। कुन्तक ने कवि शब्द की व्याख्या करते हुए काव्य में शब्द और अर्थ दोनों को समान महत्व दिया है। ऐसी रचना आह्लादकारिणी होती है।

''शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।''

1. आचार्य कुन्तक के अनुसार अनुभूति तथा अभिव्यक्ति दोनों समान हैं।
2. काव्य का 'वस्तु - तत्त्व' विशिष्ट होता है।
3. काव्य की अभिव्यजना शैली असाधारण होती है।
4. अलंकार काव्य का मूल तत्त्व है।
5. काव्य कौशलपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण कला है।
6. काव्य की कसौटी विद्वानों की प्रशंसा है।

3. वक्रोक्ति के भेद :-

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद किये हैं।

1. वर्ण विन्यास वक्रता
2. पदपूर्वार्ध वक्रता
3. पदपरार्ध वक्रता
4. वाक्य वक्रता
5. प्रकरण वक्रता
6. प्रबन्ध वक्रता

1. **वर्णविन्यास वक्रता :-** एक या दो या उन से अधिक वर्ण थोडे - थोडे अन्तर से बार - बार आना वर्णविन्यास वक्रता है। इस में शब्द विन्यास अधिक होता है।

2. **पदपूर्वार्ध वक्रता :-** शब्द के आरंभ में उत्पन्न वक्रता पदपूर्वार्ध वक्रता है।

   उदाहरण :- कमल कमल हैं, तब ही जब रविकर सो विकसाहिं।

3. **पदपरार्ध वक्रता :-** अनेक पर्यायवाची शब्द होने पर भी किसी एक शब्द को चुन कर उक्तिपूर्ण बता देना पदपरार्ध वक्रता है।

   उदाहरण :- अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।

   यहाँ अबला के स्थान पर दूसर पर्यायवाची नारी शब्द रखने से मूल अर्थ में भेद आ जाता है।

4. **वाक्य वक्रता :-** वाक्य में पूर्ण रूप से वक्रता आती है तो वह वाक्य वक्रता है। इस के दो भेद हैं।

1. स्वभावोक्ति और 2. अर्थालंकार

स्वभावोक्ति :- सूरदास के निम्न दिये गये पद में वाक्य वक्रता स्वभावतः आई है।

बालक कृष्ण माँ यसोदा के पास जाकर शिकायत करते हैं, माँ मेरी यह चोटी कब बढ़ेगी। तुम मुझे कच्चा दूध पिलाती हो, फिर वह भाई बलराम के विरोध शिकायत करता है - माँ भाई बलराम मुझे बहुत खिजाता रहता है। तुमहारा जन्म यशोदा के गर्भ से नहीं हुआ। तुम को खरीदकर लाया गया है। नन्द राजा गोरे हैं और माँ यशोदा भी गोरी है। तुम जैसे काले लडके को वे कैसे जन्म दे सकते हैं ?

''भैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो''

.....

''गोरे नन्द यसोदा गोरी तुम कत स्यामल गात ॥''

अर्थालंकार :- शब्दों में आशा रूपी उषा का वर्णन कामायनीकार बाबू जयशंकर प्रसाद ने उल्लेखित किया है।

''उषा सुनहले तीर बरसती।
जय लक्ष्मी सी उदित हुई ॥''

5. **प्रकरण वक्रता :-** जैसा प्रकरण शब्द है, उसी प्रकार किसी प्रसंग या प्रकरण में वक्रता होती है। इस में प्रसंग की मौलिकता, रोचक प्रसंगों का विस्तृत वर्णन, कभी अप्रधान प्रंसग की सत्भावना प्रसंगों का पूर्वापर क्रम से वर्णन होता है।

उदाहरण :-महाभारत में दुर्योधन के द्वारा मयसभा का संदर्शन और उसका वर्णन करना।

6. **प्रबन्ध वक्रता :-** इस के अन्तर्गत प्रबन्ध काव्य महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि का सौन्दर्य आता है। मूल भाव में परिवर्तन होना नायक के चरित्र में संशोधन कथा के मध्य में किसी अन्य प्रसंग का योग होना मुख्य फल प्राप्ति के साथ - साथ अनेक फलों की प्राप्ति प्रबन्ध का नामंकरण और मूल कथा पर आधारित प्रबन्धों का वैविध्य इस के अन्तर्गत आते हैं। इस में काकु बक्रोक्ति और श्लेष वक्रोक्ति दोनो आते हैं।

उदाहरण :- ''मैं ने कहा, सोओ मत पढ़ो।''

छात्र ने समझा ''सोओ, मत पढ़ो ।''

4. वक्रोक्ति सिद्धान्त और अभिंव्यजनावाद :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार पाश्चात्य अभिव्यंजनावाद भारतीय वक्रोक्ति सिद्धान्त का एक रूप है। लेकिन दोनों में गहरा अन्तर है। अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक 'क्रोचे' के अनुसार कला का सम्बन्ध स्वयं प्रकाशमान ज्ञान से है। जहाँ कुन्तक शास्त्रीय ज्ञान को भी कला के अन्तर्गत मानते हैं। क्रोचे उक्ति की सहज स्वाभाविकता में काव्य का सौन्दर्य मानते हैं। लेकिन कुन्तक वक्रता को ही सौन्दर्य का मूल आधार बताते हैं। क्रोचे मानसिक अभिव्यंजना को ही प्रमुख मानते हैं। किन्तु कुन्तक शाब्दिक अभिव्यक्ति की ही चर्चा करते हैं। क्रोचे कला को अविभाज्य मानते हैं। कुन्तक कला के विभिन्न - भेद और उपभेद मानते हैं। क्रोचे कवि की आत्मानुभूति तथा कवि का आनन्द काव्य का लक्ष्य मानते हैं। कुन्तक सहृदय पाठक के मन को आनन्द पहुँचाना कला का लक्ष्य मानते हैं। लेकिन डॉ. नगेन्द्र ने दोनों में कुछ साम्य स्थापित किये।

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और कुत्तक अभिव्यंजनावाद को ही काव्य का प्राण तत्त्व मानते हैं।
2. दोनों ने काव्य में कल्पना को प्रधान माना है।
3. दोनों ने उक्ति कोअनुपम माना है। वे अलंकार और अलंकार का भेद नहीं मानते हैं।
4. दोनों सफल अभिव्यंजना अथवा सौन्दर्य अभिव्यजना में श्रेणियाँ नहीं मानते।

विविध आचार्यों ने आचार्य कुन्तक और क्रोचे के बारे में अपना - अपना मत स्थापित किया है। दोनों अभिव्यंजना को काव्य का प्राणतत्त्व मानते हैं। क्रोचे वस्तु से शैली का अन्तर नहीं मानने हैं, लेकिन कुन्तक शैली की वक्रता पर ही काव्य की सफलता मानते हैं। इस प्रकार तर्क - बितर्क के अनन्तर हम एक निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। काव्य में वस्तु और शैली दोनों की प्रधानता होती है, और होनी ही चाहिए।

5. उपसंहार :-

वक्रोक्ति संप्रदाय को अधिक आदार और प्रचार प्राप्त न हुए। पूर्व प्रचलित रीति, अलंकार, ध्वनि, रस आदि सभी सिद्धांन्तों का समन्वय किसी - न - किसी रूप में वक्रोक्ति संप्रदाय में आता है । कुन्तक की वक्रतापूर्ण शैली हर संप्रदाय में दर्शित होता है। वर्ण योजना से लेकर प्रबन्ध योजना तक काव्य सौन्दर्य किसी - न - किसी रूप में रस में हर काव्य में दर्शित होती है। पूर्व प्रचलित सिद्धान्तों में अलंकार ध्वनि, रीति, रस आदि में चमत्कार होता ही रहता है। फिर वक्रोक्ति चाहे सिद्धान्त के रूप में आविष्कृत हो तब भी उपर्युक्त रसों के साथ उसका समन्वय होता है। तब उसकी अलग महत्ता का प्रतिपादन विशिष्ट रूप से हो नहीं पता।

साहित्य आचार्यों की मान्यता है कि वक्रोक्ति के बिना काव्य का सौन्दर्य नहीं है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 6

औचित्य - सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त

प्र.6. औचित्य संप्रदाय क्या है, विवेचन कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. पूर्व - परम्परा
3. औचित्य के अंग
4. पाश्चात्य काव्य - शास्त्र और औचित्य
5. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

भारतीय काव्य - शास्त्र के क्षेत्र में पाँच प्रमुख सम्प्रदाय - रस, अलंकार, रीति, ध्वनि और वक्रोक्ति अपने - अपने सम्प्रदाय को प्रमुख मानकर 'काव्य की आत्मा' कहलाये। वे आचार्य दूसरे सम्प्रदाय को नीचा दिखाने का भी प्रयत्न करते थे। उस स्थिति में आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की स्थापना करके उस विवाद को सुलझाने का गहरा योग दिया। उनका सिद्धान्त है कि काव्य में रस, गुण, अलंकार आदि सभी गुणों का महत्व है, जब कि ये सब औचित्य से समन्वित हों। एक प्रकार से औचित्य सम्प्रदाय सारे आन्य सम्प्रदायों का समन्वय या समाहार रूप है।

2. पूर्व - परम्परा :-

क्षेमेन्द्र के पूर्व भी औचित्य की चर्चा होती थी। भरत ने नाट्य - शास्त्र में औचित्य का आधार लोक की रुचि, वृत्ति एवं उसके रूप को माना था - 'वय के अनुरूप वेष होना चाहिए, वेष के अनुरूप गति, गति के अनुरूप पाठ्य तथा पाठ्य के अनुरूप अभिनय होना चाहिए।'' भरत ने स्वाभाविकता के अनुरूप आंचित्य का प्रतिपादन किया है।

आगे चलकर दण्डी ने थी काव्य में औचित्य का स्थान संकेत किया। वस्तुतः भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट आदि ने दोष - विवेचन में औचित्य के अभाव की ही चर्या की थी। आनन्दवर्धन ने औचित्य के छः प्रकार निश्चित किये - (1) रसौचित्य, (2) अलंकारौचित्य, (3) गुणौचित्य, (4) संघटनौचित्य, (5) प्रबन्धौचित्य और (6) रीति - औचित्य।

(1) **रसौचित्य** :- काव्य में रस का उचित रूप से प्रतिपादन होना ही रसौचित्य है। आनन्दवर्धन के अनुसार शब्द और अर्थका नियोजन, व्याकरण शुद्धता, प्रबन्धकाव्य सन्धि, घटना आदि रसानकूल हो, विरोधी रस के अंगों का वर्णन न हो, गौण वस्तु, घटना, पात्र तथा वातावरण के कारण प्रधान रस में भंग न हो, अंगरस और अंगीरस का परस्पर अनुपात में सबन्ध हो, विभाव, अनुभाव, संचारी आदि के वर्णन में औचित्य की रक्षा होती चाहिए।

(2) **अलंकारौचित्य** :- इस के अनुसार अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक हो। अलंकार भावों की पुष्टि में योग देनेवाला हो। अलंकार काव्य में गौण है, प्रधान नहीं। यमक, श्लेष आदि अलंकार कोरे चमत्कार के लिए प्रयुक्त न हो।

(3) **गुणौचित्य** :- काव्य में विभिन्न गुणों का समन्वय रस के अनुकूल हो जैसे - ओज का वीर रस में, माधुर्य का श्रृंगार और करुण में ।

(4) **संघटनौचित्य** :- संघटना रसानुकूल होना चाहिए । पात्र की प्रकृति, स्थिति तथा मानसिक दशा के अनुसार संघटना होनी चाहिए। काव्य की प्रकृति के अनुकूल संघटना की सृष्टि हो।

(5) **प्रबन्धौचित्य** :- आनन्दवर्धन ने प्रबन्धगत औचित्य के लिए कुछ नियम निर्धारित किये हैं - प्रसिद्ध तथा कल्पित बृत्तों में रसानुपात हो, वर्ण्य वस्तु रसानुकूल हो, घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध रसानुकूल हो, पात्रों की प्रकृति परिवर्तित न करनी चाहिए।

(6) **रीति औचित्य** :- रीति का प्रयोग भी उचित रूप से - वक्ता, रस, अलंकार तथा काव्य के स्वरूप के अनुकूल करना चाहिए।

आनन्दवर्धन के अनन्तर आचार्य कुन्तक एवं महिमभट्ट ने भी अपने गन्थों में औचित्य का उल्लेख किया। शब्दौचित्य और अर्थौचित्य का विवेचन हुआ है।

आचार्य श्रेमेन्द्र ने सारे आचार्यों के भावें के समाहार के रूप में बताया - "स्वाभाविकता ही औचित्य है।"

3. औचित्य के अंग:-

आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार पद, वाक्य, प्रबन्ध का अर्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तन्त्व, सत्व, अभिप्राय, स्वभाव, सार - संग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वाद और काव्य के विविध अंश औतिच्य के अन्तर्गत आते है।

कुछ उदाहरण :-

'चन्द्रमुखी युवती के मस्तकर पर कस्तूरी तथा श्यामा के मस्तक पर चन्दन का तिलक।'

'हे देव! युद्ध के समय तुम्हारी इस खड्गधारा में सारे शत्रु डूब गये।'

आचार्य क्षेमेन्द्र के पश्चात् विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ ने औचित्य की चर्चा की है। औचित्य भारतीय अलंकार शास्त्र की महान देन है।

4. पाश्चात्य काव्य - शास्त्र और औचित्य :-

अरस्तू ने चार प्रकार के औचित्य की मीमांसा की है - (1) घटनौचित्य, (2) रूपकौचित्य, (3) विशेषणौचित्य और (4) विषयौचित्य । इनस ने दो प्रकार के औचित्य अलंकारौचित्य एवं शब्दौचित्य की विवेचना की है। आचार्य होरेस ने ऐतिहासिकता, अभिनय तथा छन्दों के औचित्य पर विचार किया है। क्लासिकीय युग में औचित्य की पूरी - पूरी मान्यता रही। लोक में उदात्त तथा शिष्ट रूप को आदर्श बताया गया है । महाकवि पोप ने औचित्य पर विचार कियाऔर भावनुकूल वर्ण - योजना को औचित्य माना है।

5. उपसंहार :-

काव्य - शास्त्र में औचित्य की प्रतिष्ठा से अभावों की पूर्ति हुई है। अलंकारवादियों, रीतिवादियों एवं वक्रोक्तिवादियों की अति चमत्कारवादी प्रवृत्तियों के नियन्त्रण में योग दिया गया। क्षेमेन्द्र का औचित्य या स्वाभाविकता सम्बन्धी दृष्टिकोण आधुनिक युग की धारणाओं के भी अनुकूल है। औचित्य से काव्य में मूल सौन्दर्थ की रक्षा होती है। औचित्य में स्वाभाविकता की परिपुष्टि होती है। सूरदास के बालवर्णन में भावात्मकता का पुट ही सौन्दर्थ का मूलकारण है। स्वाभाविकता उस मूलकारण की विशेषता है।

औचित्य एक तन्त्व है जो कविता - कामिनी के मुखचन्द्र को निखारकर निष्कलंक, अम्लान एवं स्वच्छ बनाता है। प्रयोगवादी शब्दावली में औचित्य अधिक से अधिक 'लक्स की टिकिया' है, 'सौन्दर्य की पुडिया' उसे कह नहीं सकते।

बिहारी के शब्दों में -

'वह चितवनि और कछु, तिहि बस होत सुजान'।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 7

नाटक

प्र.7. भारतीय एवं पाश्चात्य मतों के अनुसार नाटक के तन्त्वों का उल्लेख करते हुए नाटक की 'कथावस्तु' के विभिन्न अंगो का सम्यक् परिचय दीजिये।

(अथवा)

नाटक के तत्वों पर विचार कीजिये।

ज. भारतीय परंपरा के अनुसार नाटक के चार तन्त्व हैं - (1) कथा - वस्तु (2) नेता या पात्र (3) रस और (4) अभिनय कुछ लोग वृत्ति को पाँचवा तन्त्व बताते हैं। वृत्तियाँ एक प्रकार से क्रिया - विधान न्त्वलियाँ होती है। इसलिए वे अभिनय के अन्तर्गत ही आती हैं। यूरोपीय समीक्षक जो उद्देश्य तन्त्व बताते हैं वह भारतीय नाटकों में रस - संचार का रूप लेता है।

कथावस्तु

नाटक के कथानक को कथावस्तु कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'प्लाट' (plot) कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है - (1) मुख्य कथा और (2) गौण कथा।

(1) मुख्य कथाः इसे आधिकारिक कथा भी कहते हैं। यह प्रधान पात्रों से संबंध रखती है। इसका सूत्र प्रारंभ से फल - प्राप्ति तक रहता है। रामायण में राम की कथा मुख्य कथा है।

(2) गौण कथाः इसे प्रासंगिक कथा भी कहते हैं। यह प्रसंग वश आनेवाली कथा है। इसका सम्बन्ध सीधा नायक और नायिका से न रहकर अन्य पात्रों से रहता है। यह कथा मुख्य कथा की गति को बढ़ाती है। इसमें फल - सिद्धि किसी पात्र को होती है। परंतु उससे नायक का हित - साधन अवश्य होता है। रामायण में सुग्रीव की कथा प्रासंगिक है। इसमें सुग्रीव को फल - प्राप्ति होती है। बाली से उसकी रक्षा होती। इससे राम की कथा को गति मिलती है। सुग्रीव हनुमान को सीता की खोज में भेजते और वानरों की सेना तैयार होती है।

प्रासंगिक कथा के दो भेद हैं - (1) पताका और (2) प्रकरी।

(1) पताकाः जो प्रासगिक कथा आधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है, उसे पताका कहते हैं। जैसे, सुग्रीव की कथा।

(2) प्रकरीः जो प्रासगिक कथा आधिकारिक कथा के बीच में ही रुक जाती है, उसे प्रकारी कहते हैं। जैसे, जटायु की कथा।

कथानाक के आधार पर नाटक के तीन प्रकार हैं - (1) प्रख्यात (2) उत्पाद्य और (3) मिश्र।

(1) प्रख्यातः वे नाटक प्रख्यात माने जाते हैं, जिनका कथानक इतिहास, पुराण या परंपरागत जनश्रुति से सबंधित हो।

(2) उत्पा.. : जो नाटक नाटककार की कल्पना से गढ़े जाते हैं, वे उत्पाद्य माने जाते हैं। जैसे, सामाजिक नाटक।

(3) मिश्रः जिनमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण हो, उन्हें मिश्र नाटक कहते हैं। इन में नाटककार को काफी स्वतत्रता होती हैं। वह इतिहास की मूल बातों में परिवर्तन नहीं कर सकता। लेकिन वह मूल बात को सरस बनाने के लिए प्रासंगिक बातों में थोड़ा - बहुत परिवर्तन करता है।

नाटकों में फल की प्राप्ति की इच्छा से किये गये कार्य के व्यापार की दृष्टि से पाँच अवस्थायें मानी गयी हैं - (1) आरंभ (2) यत्न (3) प्राप्त्याशा (4) नियताप्ति और (5) फलागम।

यूरोपीय विचारधारा के अनुसार नाटक की पाँच अवस्थायें मानी जाती हैं - (1) Exposition (व्याख्या) और Initial Incident (प्रारंभिक घटना) (2) Rising Action (कार्य का चरमसीमा की ओर बढ़ना) (3) Crisis (चरम सीमा) (4) Falling Action (कार्य की ओर झुकाव) और (5) Catastrophe (समाप्ति अथवा परिणाम)

भारतीय विचारधारा के अनुसार पाँच अर्थप्रकृतियाँ भी होती हैं - (1) बीज (2) बिन्दु (3) पताका (4) प्रकरी और (5) कार्य। ये कथावस्तु के चमत्कारपूर्ण अंग हैं जो कथावस्तु को कार्य केलिए लिये जाते हैं।

अवस्याओं और अर्थप्रकृतियों को मिलानेवाली सांधियाँ भी होती हैं। ये पाँच हैं - (1) मुख (2) प्रतिमुख (3) गर्भ (4) विमर्श या अवमर्श और (5) निर्वहण अथवा उपसंहार।

नाटक की कथावस्तु कथोपकथन या संवाद के रूप में रहती है। ये तीन प्रकार के हैं -

(1) सर्वश्राव्य : ये सबके सुनने केलिए हैं।

(2) अश्राव्य : ये दूसरों के सुनने के लिए नहीं हैं।

(3) नियत श्राव्य : ये कुछ पात्रो के सुनने के लिए हैं और कुछ के लिए नहीं हैं।

आकाशभाषित भी कथोपकथन का एक प्रकार माना गया हैं। इसमें कोई पात्र आकाश की ओर मुँह उठाकर किसी कल्पित व्यक्ति से बात करता हुआ दिखयी पड़ता है।

पात्र :-

नाटक के सभी तत्त्व पात्रो के आश्रित रहते हैं। प्रधान पात्र को नायक या नेता कहते हैं। जो कथा को फल की ओर ले जाता है वही नेता होता है। भारतीय विचारधारा के अनुसार नाटक के नायक को उच्च और उदार गुणों से सपन्न होना चाहिए। नायक के चार प्रकार बताये जाते हैं - (1) धीरोदात्त (2) धीर ललित (3) धीर प्रशांत और (4) धीरोद्धत।

नायक का प्रतिद्वन्द्वी प्रतिनायक कहलाता है। यह सदा धीरोद्धत होता है। संस्कृत नाटक में विदूषक हास्य तत्त्व का पोषण करता है। अंग्रेजी में 'clown' पात्र विदूषक के समान होता है।

नायिका आठ गुणों से युक्त होती है। उसमें यौवन के साथ कुल का गर्व तथा गुण, शील तथा प्रेम की आंतरिक श्रेष्ठताएँ भी होने चाहिए।

नाटक में चरित्र - चित्रण प्रत्यक्ष रुप से नहीं होता। उसमें परोक्ष रुप से चरित्र - चित्रण किया जाता है। नाटक के पात्र एक - दूसरे के चरित्र पर क्रकाश डालते हैं या पात्र स्वयं अपने चरित्र का उद्घाटन करते हैं। कथोपकयन से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

रस और उद्धेश्य :-

भारतीय परंपरा के अनुसार नाटकों में रस को प्रधानता दी गयी है। प्रत्येक नाटक में कोई - न - कोई रस मुख्य (अंगी) रूप में रहता है और दूसरे रस गौण (अंग) रुप में रहते हैं। 'शकुंतला' नाटक में श्रृंगार मुख्य रस है। वीर, वात्सल्य, रौर्द आदि गौण रुप में आये हैं।

पाश्चात्य देशों में नाटक में उद्धेश्य को प्रधानता दी जाती है। नाटककार किसी उद्धेश्य से नाटक की रचना करता है। वह अपने उद्देश्य को किसी पात्र के द्वारा प्रकट करता है। आज के समस्यामूलक नाटकों में इस उद्धेश्य की प्रधानता स्पष्टतया गोचर होती है।

अभिनय :-

अभिनय नाटक का प्रधान अंग है। इसके द्वारा नाटक की सामग्री अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति की ओर पहुँचायी जाती है। अभिनय के चार प्रकार हैं - (1) आंगिक (2) वाचिक (3) आहार्य और (4) सात्विक। भरतमुनि ने अभिनय के बारे में विस्तार से विवेचन किया है।

वृत्तियाँ :-

वृत्तियों का नाटक में बड़ा महत्त्व होता है। इनका संबध पात्रो के चलने - फिरने के ढंग से हैं। ये चार हैं - (1) कैशिकी (2) सात्वती (3) आरभटी और (4) भारती।

(1) कैशिकीः अभिनव गुप्त के अनुसार केश जिस प्रकार शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार यह वृति भी नाट्य में शरीर चेष्टाओं द्वारा शोभा बढ़ाती है। भरतमुनि के अनुसार इस वृत्ति का प्रयोग नाटक में स्त्री - पात्रों को करना चाहिये। इसके अन्तर्गत नृत्य गीत, कामोद्भव मृदुल - सुकुमार चेष्टायें रहती हैं। इस वृत्ति का प्रयोग श्रृंगारादि रसों के प्रसंग में किया जाता है।

(2) सात्वतीः इसका संबध चित की दीप्ति से है। वीर, रौद्र अद्भुत रसों के वर्णन में इसका विशेष प्रयोग होता है। इसका प्रयोग उद्धत पुरुष ही करते हैं। हर्षादि भालों कीही इसके द्वारा अभिव्यंजना होनी चाहिये।

(3) **आरभटी:** माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध, संघर्ष, आघात, प्रतिघात और बंधनादि से युक्त यह वृत्ति रौद्र रस के वर्णन में काम आती हैं।

(4) **भारती:** इसमें स्त्रियाँ वर्जित रहती हैं। इसका संबंध पुरुष नटों या भरतों से है। इसका संबंध शब्दों से है। इसका प्रयोग सब रसों में होता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 8

महाकाव्य

प्र.8. महाकाव्य के तन्त्वों का परिचय दीजिए और हिन्दी के किसी एक आधुनिक महाकाव्य को महाकाव्य की कसौटी पर कसिये। (या)

महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षण प्रकट करते हुये आधुनिक काल के किसी एक महाकाव्य पर प्रकाश डालिये।

ज. बंध अर्थत् एक सुनिश्चित क्रम के आधार पर श्रव्य - काव्य के दो भेद माने जाते हैं - 1. प्रबंधकाव्य और 2. मुक्तककाव्य या निर्बन्ध काव्य। प्रबंधकाव्य के पुनः दो भेद किये गये हैं - 1. महाकाव्य और 2. खंडकाव्य।

महाकाव्य के लक्षण :-

प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। दोनों सिद्धांतो का समन्वय करने पर महाकाव्य की कुछ सर्व - स्वीकृत विशेषतायें ज्ञात होती हैं जिनके आधार पर आधुनिक महाकाव्य के स्वरूप का निश्चय हो सकता है।

(क) वर्ण्य विषयगत विशेषतायें :-

1. इसका कथानक इतिहास - सम्मत विस्तृत एवं श्रेष्ठ होता है। इसमें अधिकांश यथार्थ घटनाओं का वर्णन होता है। कुछ कल्पित घटनायें होने पर भी वे अस्वाभाविक न होकर सत्य सी प्रतीत होती हैं। सभी प्रासंगिक कथायें मुख्य कथा से सुसंबद्ध होती हैं। इसमें लौकिक एवं पारलौकिक सभी प्रकार की घटनायें दिखलाई जाती हैं।
2. इसमें एक नायक होता है जो देवता या उत्तम वंश के धीरोदात्त गुणों से समन्वित पुरुष होता है। इसमें एक वंश के बहुत से राजा भी हो सकते हैं।
3. इसमें प्रमुख पात्रों के चरित्र का विकास पूर्ण रूप से दिखलाया जाता है।
4. इसमें उषा, संध्या, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातः काल, मध्याह्न, आखेट, वर्षा, ऋतु, वन, समुद्र, संग्राम, यात्रा, अभ्युदय आदि विषयों का वर्णन होता है।
5. इस में आशा की विशालता, पारस्परिक सहानुभूति, पीडितों के कष्ट - निवारण संबंधी प्रयत्न, मानव जीवन के सत्य, मानवता, विश्वबंधुत्व, विद्रोह, दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों के संघर्ष आदि का वर्णन होता है।
6. इसमें मानव - मनोगत भावों एवं नव - रसों का सुंदर वर्णन होता है। किंतु श्रृंगार, वीर तथा शांत रस में से किसी एक रस की प्रधानता होती है और अन्य रस गौण होते हैं।

(ख) कलागत विशेषतायें :-

1. महाकाव्य सर्गो में बँधा होता है। सर्गों की संख्या आठ या उससे अधिक होनी चाहिए . किंतु वे न अधिक लंबे और न अधिक छोटे हों। प्रत्येक सर्ग अंत में आगामी सर्ग की कथा सूचित हो।
2. एक सर्ग में एक ही छंद रहता है और अंत में बदल जाता है। यह नियम शिथिल भी हो सकता है।
3. इसकी शैली उत्कृष्ट एवं कलात्मक होती है। भाषा भव्य होती है। शब्द - विधान उच्च कोटि का होता है। उसमें परंपरागत विशेषणों, मुहावरों, कथन - प्रणालियों, शब्द - शक्तियों आदि का प्रयोग होता है। इसमें अलंकारों का प्रयोग भावानुकूल एव भावोत्कर्ष - विधाायक होता है।
4. इसकी रचना नाटकीय ढंग से होती है।
5. इसका नामकरण कवि, इतिवृत्त, नायक या किसी प्रमुख पात्र के आधार पर किया ज़ाता है।

कामायनी - एक महाकाव्य के रूप में :-

कामायनी आधुनिक युग का महाकाव्य है। उसमें महाकवि प्रसाद ने अतीत के युग का आश्रय लेकर भी वर्तमाान समस्याओं पर प्रकाश डाला है। यह एक ऐसा महाकाव्य है जो नूतन युग का प्रतिनिधि माना जा सकता है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद के अनुसार, ''कामायनी आधुनिक युग की परिवर्तित विचारधारा के आधार पर निर्मित महाकाव्य है, जिसमें भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों देशों की अधिकांश प्रचीन और नवीन मान्यताओं के दर्शन होते हैं ''।

अतः कथा - प्रवाह, चरित्र, प्रकृति - चित्रण, रस - परिपाक, सामाजिक - चित्रण आदि का विवेचन करने पर कामायनी आधुनिक सफल महाकाव्य प्रमाणित होता है।

कथानकः कामायनी की कथावस्तु पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। उसकी कथा - सामग्री ऋग्वेद, पुराणों तथा शतपथ ब्राहमण में बिखरी पड़ी है। इसमें जलप्लावन की घटना, देवसृष्टि वर्णन आदि मिलते हैं । प्रसाद जी ने इन्हीं प्राचीन ग्रथों से सूत्र लेकर, विच्छिन्न श्रृंखलाओं को कल्पना से जोड़कर कथा को काव्यात्मक बनाया है।

कामायनी की कथा उस आदिम पुरुष और आदिम नारी की कथा है जिन्होंने सारी सभ्यता का विकास किया। अतः यह एक साधारण कथा नहीं, वरन् एक महान् व्यापक कथा महत्वपूर्ण कथा है।

कथा के अनुरूप उसकी घटनायें भी महान् हैं। मनु की चिंता का प्रथम सर्ग जल - प्रलय की घटना का उल्लेख कर काव्य के महत् आशय की सूचना देता है। 'आशा' द्वितीय सर्ग पृष्ठभूमि का काम करता है। घटना - क्रम का आरंभ तृतीय सर्ग 'श्रद्धा' से होता है। 'काम', 'वासना' और 'लज्जा' के सर्ग सुख और श्रृंगार से सज्जित है। नायिका के मन में प्रथम आशंका का उदय 'लज्जा' सर्ग में होता है। 'कर्म' और 'ईर्ष्या' सर्गो में क्रमशः बढ़ता हुआ यह उद्वेलन 'इड़ा' सर्ग में चरमसीमा को पहुँचता है। इसके पश्चात् काव्य निर्गति की सोर उतरते लगता है। 'स्वप्न', 'संघर्ष' और 'निर्वेद' के सर्ग इसी उतार के परिचायक हैं ।

'कामायनी' काव्य में वस्तु - विन्यास दुखांत काव्य के अनुकूल है । परंतु कामायनी और उसके पुत्र मानव को पाकर मनु पुलकित होते हैं तो कथा सुखांत बनती है। इस प्रकार कवि प्रसाद की भारतीयता ने अपना अनोखा चमत्कार दिखाया है।

नायक :- 'कामायनी' के नायक मनु हैं। अमर संतान होने के कारण वे नायक बनने योग्य हैं। उनमें धीर ललित नायक बनने के गुण वर्तमान हैं। वे दयावान हैं। प्रलय से बचे किसी प्राणी केलिए अन्न रख आना उनकी दया का परिचायक है। वे वीर तथा साहसी हैं। वे सुखान्वेषी हैं। वे किसी के प्रतिबंध में रह नही सकते।

परंतु 'कामायनी' नायक - प्रधान काव्य न होकर नायिका - प्रधान काव्य है। इस काव्य की नायिका श्रद्धा है। उसमें कवि ने लगभग उन सभी गुणों का समावेश किया है जिनका शास्त्रों में मिलता है।

चरित्र - चित्रण :- चरित्र ही वस्तु - योजना को आगे बढ़ाते है। अतः चरित्र - योजना महाकाव्य का एक मुख्य विषय है। घटनाओं का घटाटोप उपस्थित कर देना ही चरित्र - चित्रण नहीं है, उसके लिए मार्मिक दृष्टि अपेक्षित होती है।

'कामायनी' के मनु चाहे परंपरायुक्त धीरोदात्त नायक का आदर्श उपस्थित न करते हों किंतु चरित्र - चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। यद्यपि वे वैदिक और पौराणिक कथाओं से लिये गये हैं तथापि वे किसी विशिष्ट देश और काल से संबद्ध और सीमित नहीं हैं। वे कुछ दुर्बलताओं से पूर्ण हैं।

श्रद्धा श्रेष्ठ चरित्रवाली है। छल, प्रतारणा और मिथ्याचरण से दूर रहकर विश्वास, प्रेम और सत् के प्रति वह अधिक सजग रहती है। जीवन की अंतः स्थिति के प्रति आस्थावान है। वह एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित है । इड़ा एक स्वार्थपरायण, बुद्धिवादी व्यवहार - कुशल नारी है। इस तरह कामायनी में चरित्र - चित्रण का सुंदर वर्णन हुआ है।

प्रकृति - चित्रण :- कामायनी की कथा अधिकांश प्रकृति की गोद में घटित है। अतः उसमें प्रकृति - वर्णन सभी रूपों में मिलता है। उषा का सजीव वर्णन देखिये -

उषा सुनहले तीर बरसती
जय लक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित काल रात्रि भी
जल में अंतर्निहित हुई।

इसमें प्रकृति का चित्र ही नहीं उत्तरता, प्रत्युत एक रूप भी खड़ा हो जाता है, जिसमें स्पंदन है, गति है और जो बोलता तथा हँसता है। इसमें प्रकृति की आत्मा के दर्शन होते हैं।

समाज - चित्रण:- कामायनी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महा काव्य है। इसमें नारी महत्व की अंभिव्यक्ति हुई है। नारी को दया, सेवा, त्याग, ममता, मधुरिमा आदि से पूर्ण बतलाया गया है। धार्मिक संकीर्णता तोड़कर मानवता की ओर संकेत भी इसमें मिलते हैं। इसी तरह गाँधीवाद के सत्य, अहिंसा, सेवा, ग्राम - सुधार आदि की अभिव्यक्ति भी इसमें मिलती है।

इस तरह महाकाव्य की कसौटी पर कसने पर 'कामायनी' आधुनिक युग का एक श्रेष्ठ काव्य प्रतीत होता है।

Lesson Writer
डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 9

गीतिकाव्य

प्र.9. गीतिकाव्य की परिभाषा देकर उसकी विशेषतायें बताइये।

ज. गीति काव्य की परिभाषा :-

गीति काव्य को ऐसी कविता बताया गया है जो वृत्तात्मक और नाटकीय न हो। गीत में संगीत की प्रधानत होती है। उपर्युक्त कथन का तात्पर्य ऐसी कविता से है जो आत्मप्रधान हो जिसमें कथा के स्थान पर भावों का उत्कर्ष हो। ऐसी कविता में कवि के स्वयं के भावों का चित्रण प्रधान होता है। गीत में संगीत के साथ - साथ वर्णन का मोह विद्यमान रहता है।

जर्मन दार्शनिक हीगल का मत है - ''जब कवि विश्वात्..में अपनी आत्मा लय करके अपनी अंतरात्मा की रागिनी काव्योचित मधुरता एवं कोमलता के साथ सुनाता है तब उसे गीतिकाव्य कहते हैं।''

महादेवी जी के शब्दों में ''सुख - दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने - चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।'' इससे स्पष्ट है कि 'गीति' दूसरे का इतिहास न लाकर कवि की अपनी वस्तु बन जाता है।

गीतिकाव्य के लक्षण : गीतिकाव्य के ये लक्षण हैं -

1. संगीतात्मकता 2. आत्माभिव्यक्ति 3. रागात्मक अनुभूति की इकाई और समत्व 4. जीवन के किसी एक अंश का चित्रण 5. संक्षिप्तता 6. विविधता 7. भावाभिव्यंजना और 8. शैली।

1. **संगीतात्मकता :-** अभिव्यक्ति की पूर्णता केलिये काव्य को संगीत का आश्रय लेना पड़ता है। संगीत और काव्य की इसी अन्योन्याश्रित भावना को समझकर प्रगीत की अनिवार्य विशेषताओं में संगीत को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संगीत का आश्रय पाकर भाव खिल उठते हैं और भावों को पाकर प्रगीत हो जाता है।

   संगीतात्मकता की दृष्टि से किसी कवि की विवेचना करते समय हमें इन बातों पर ध्यान देना पड़ता है।

   1. गीत में शास्त्रीय संगीत का निर्वाह
   2. रागों की भावानुकूल स्थिति
   3. शब्द - योजना और संगीत

2. **आत्माभिव्यक्ति :-** अनुभूति का जैसा रूप होगा; अभिव्यक्ति भी उसी प्रकार की होगी। कवि का हृदय जो कुछ अनुभव करता है, उसे अवसरानुकूल और कुशलता से अभिव्यक्त करने में ही उसकी कला सार्थक रूप को प्राप्त करती है।

3. **रागात्मक अनुभूति की इकाई और समत्व :-** प्रगीत काव्य केलिये रागात्मक अनुभूति की इकाई और समत्व अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा प्रगीत की अंतर्धारा भावपूर्ण न रह सकेगी। अनुभूति अपने आप में इतनी भावात्मक है कि उसे परिभाषा में बाँधना कठिन है। अनुभूति का रागात्मक होना उसकी एक अवस्था - विशेष का दिग्दर्शन करता है।

4. **जीवन के किसी एक अंश का चित्रण :-** जीवन के किसी एक अंश की अभिव्यक्ति से हमारा तात्पर्य एक अवस्था विशेष का चित्रण है। इस चित्रण में कवि स्वयं के जीवन की विस्तृत तालिका में उद्भूत कुछ रागात्मक क्षणों को वाणी देता है अथवा किसी कथा को श्रृंखला की पृथक कडियों के समान पाठक के समक्ष उपस्थित करता है।

5. **संक्षिप्तता :-** सक्षिप्तता गीत के प्रभाव को अखंड बनाये रखती है और भाव की इस अखंड प्रकृति के कारण एक अन्वित प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है। प्रगीत का लक्ष्य केवल चित्र उपस्थित करना है। प्रगीतकार को एक चित्र के द्वारा जीवन के अनुभूत क्षणों के भावो को रूप देना है। प्रगीत काव्य में संक्षिप्तता को आवश्यक तत्त्व समझने का एक मात्र मर्म भावों की तीव्रता के कारण है। अलंकार विशिष्ट शब्दों का प्रयोग और समस्त पद प्रगीत की आकृति और विस्तार के लिये प्रयुक्त होते हैं।

6. **विविधता :-** कवि के मन में स्थित भाव परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। जिन प्रेरक तत्वों से प्रेरणा पाकर कवि अनुभूति की तीव्रता को शब्द - बद्ध करता है, समस्त प्रेरक स्वानुकूल अभिव्यक्ति के प्रेरण बनते हैं।

7. **भावाभिव्यंजना :-** कवि विभिन्न भावों को सरलता और सचाई के साथ अपने गीतों में प्रकट करता है। तुलसी की भक्ति सेव्य - सेवक भाव की थी। अतः उन्होंने विनय पत्रिका में दैन्य आत्म भर्त्सना, विश्वास, निर्वेद, बोध, दृढता, गर्व, उपालंभ, मोह, चिंता, विषाद, प्रेम आदि अनेक भावों को प्रकट किया।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 10

उपन्यास

प्र. उपन्यास की परिभाषा देकर उसके तन्त्वों पर विचार कीजिये।

ज. परिभाषाः साहित्य दर्पण में 'उपन्यास' शब्द की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है - 'उपन्यासः प्रसादनम्'' अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं। इस शब्द की व्याख्या दूसरे प्रकार से दी जाती है - ''उपपतिकृतो हयर्थ उपन्यासः संकीर्तितः'' अर्थात् किसी अर्थ को युक्ति - युक्त रूप में उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है।

साहित्यकोश में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है - ''यह शब्द उप (समीप) तथा न्यास (थाती) याग से बना है जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु, अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है।'' परंतु आजकल यह माना जाता है कि उपन्यास मानव जीवन का चित्र है, प्रतिबिंब नहीं।

उपन्यास के तन्त्वः उपन्यास के तत्व थोड़े - बहुत मतभेद के साथ इस कार बताये जाते हैं - 1. कथावस्तु (कयानक) 2. पात्र और चरित्रचित्रण 3. वार्तालाप या कथोपकथन 4. वातावरण 5. उद्देश्य 6. भाषा तथा शैली।

1. **कथावस्तु :-** यह उपन्यास की भित्ति है। इसकी उत्तमता पर रचना की उत्तमता निर्भर होती है। इसलिए उपन्यासकार का बहुत - कुछ कौशल उसके कथानक के चुनाव में है। कथानक का विषय कहीं जीवन से मिलता है और कहीं इतिहास - पुराणों से। जीवन से लिये गये कथानक में सजीवता सहज में ही लायी जाती है। परंतु इतिहास तथा पुराणों से ली गयी कथावस्तु में सहजता लाने केलिये उपन्यासकार को कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। कथानक में मौलिकिता, कौशल, संभवता, सुसंगठिता तथा रोचकता आवश्यक हैं। एक ही भाव अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता। जिस भाव को जिस रूप में प्रस्तुत करना है, यह लेखक की मौलिकता पर निर्भर होती है। कौशल से अभिप्राय कथावस्तु में संबंध - निर्वाह, उसकी उलझनों को सुलझाने की चतुरता है। सम्भवता कथानक का आवश्यक गुण है। उपन्यास में कोई ऐसी बात नहीं कही जा सकती जो सम्भव और घटनीय न हो। उपन्यास की काल्पनिक घटनायें भी वास्तविक घटमाओं की प्रतिच्छाया होती हैं। संगठन से तात्पर्य यह है कि न तो कोई आवश्यक बात छूटे और न कोई अनावश्यक बात आए। इसके साथ घटनाओं को कार्य - कारण श्रृंखला में बाँधकर क्रमागत रूप में दिखाना आवश्यक है। रोचकता उपन्यास केलिए बहुत आवश्यक है। उपन्यास में रोचकता बनाने केलिए उपन्यासकार घटनाओं को एक - दूसरे से संबंधित रखते हुये आकस्मिक और अप्रत्याशित को कथानक में स्थान देता है।

कथावस्तु के अंतर्गत मुख्य कथा तथा प्रासंगिक कथायें होती हैं। उपन्यासकार प्रासंगिक कथाओं का वहीं तक प्रयोग करता है जहाँ तक मुख्य कथा को आगे बढ़ाने में वह सहायक होती है। यदि प्रासंगिक कथाओं को मुख्य

कथा से संबंद्ध नहीं किया जाता है तो कथानक में विखराव आ जाता है जिस से उसकी स्वाभाविकता में बाधा पहुँचती है।

2. **पात्र तथा चरित्र - चित्रण :-** उपन्यासों में समग्र जीवन का चित्रण होता है। इसलिए साधारणतः उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक होती है। आरंभिक उपन्यासों के पात्र सांमती उच्च वर्ग से लिये गये थे। प्रेमचंद ने पहले - पहल अपने उपन्यासों में खोम्चेवाले, बैंकवाले कृषक, श्रमिक, मजदूर जैसे साधरण लोगों को स्थान दिया।

चरित्र - चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तन्त्व है, कयों कि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र के कारण ही हम एक व्यक्ति को दूसरे से अलग कर सकते हैं। उपन्यासकार चरित्र के अंतर्गत पात्र के बाहरी और भीतरी रूप को प्रकट करने की चेष्टा करता है। वह उसकी सबलताओं और दुर्बलताओं दोनों को चित्रित करता है।

पात्र दो प्रकार के होते हैं - 1. सामान्य या वर्गगत और 2. व्यक्ति। जो पात्र किसी जाति या वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं वे टाइप, सामान्य, वर्गगत या प्रतिनिधि पात्र कहे जाते हैं। उदाहरणं के लिये हम 'गोदान' के राय साहब को ले सकते हैं। वे जमींदारों के प्रतिनिधि हैं। प्रायः बड़े जमींदार ऐसे ही होते हैं। व्यक्तित्व - प्रधान पात्र वे हैं जो अपनी निजी विशेषता रखते हैं। वे साधारण लोगों से कुछ विलक्षण होते हैं। जैनेंद्र की सुनीता, अज्ञेय जी का शेखर इसी प्रकार के पात्र हैं। चरित्रों का दूसरा विभाजन इस प्रकार किया जाता है - 1. स्थिर और 2. गतिशील या परिवर्तनशील . स्थिर चरित्रों में बहुत कम परिवर्तन होता है। गतिशील चरित्रों में उत्थान और पतन और उत्थान देखने को मिनता है। जैनेंद्र की 'सुनीता' स्थिर पात्र है तो प्रेमचंद की 'सुमन' गतिशील पात्र है।

उपन्यासकार निम्न प्रकार से चरित्र चित्रण करता है - 1. स्वंय अपनी ओर से पात्र का वर्णन करता है। 2. पात्रो के भाषण या क्रिया - कलाप द्वारा पात्र का चरित्र प्रकट करता है। गोदान उपन्यास में प्रेमचंद जी ने मिस्टर खन्ना का वर्णन करते हुए लिखा है - "मिस्टर खन्ना भी साहसी आदमी थे, संग्राम में आगे बढनेवाले। दो बार जेल हो आए थे ....."

चरित्र चित्रण ये गुण हों - 1. संगति 2. सजीवता और 3. स्वाभाविकता।

3. **कथोपकथन :-** कथोपकथन के दो प्रयोजन हैं - 1. कथानक को आगे बढ़ाता है। 2. पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। कथोपकथन परिस्थिति और पात्र के बौद्धिक विकास के अनुकूल होना चाहिए। कथोपकथन की भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिए। उसका विषय पात्रों के मानसिक धरातल के अनुरूप होना वांछनीय हैं। कथोपकथन में स्वाभाविकता, सार्थकता और सक्षिप्तता के गुण हों।

प्रेमचंद के 'गबन' उपन्यास का यह कथोपकथन देखिये -

माता: मैं लेकर क्या करूँगी बैटी, मेरे पहनने - ओढ़ने के दिन निकल गये। कौन लाया है बेटा, क्या दाम है इनके ?

रमा: एक सराफ दिखाने आया है, अभी दाम नहीं पूछे ; मगर ऊँचे दाम होंगे। लेना तो था नहीं, दाम पूछकर क्या करता ?

जालपा: लेना ही नहीं था तो यहाँ लाये क्यों ?

इस कथोपकथन से माता, रमा तथा जालपा, इन तीनों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

पात्रोचित भाषा का यह उदाहरण 'गबन' से दिया गया है। दिखिये

कहार: तो का चार हाथ मोड़ कर लई, कामें से तो गया, रहिन बाबू मेम साहब के तीन रूपैया लेने का भेजिब रहा।

जालरा: कौन मेम साहब ?

4. **वातावरण :-** कथा को वास्तविकता का आभास करने केलिए देश - काल के अनुसार वेष आदि दिखाना आवश्यक होता है। इससे यह लाभ होता है कि पाठक केलिए उपन्यास, उपन्यास न रहकर वास्तविक जीवन - सा बन जाता है। वातावरण को देश - काल भी कह दिया जाता है, क्यों कि जिस स्थान पर और जिस काल में उपन्यास के पात्रों ने काम किया है उन दोनों का चित्रण उपन्यासकार को करना पड़ता है। इसी में रहन - सहन का ढंग, रीति - रिवाज, खान - पान, युग की पृष्ठभूमि आदि आ जाते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में आधुनिक युग श्री के.एम.मुंशी के उपन्यासों में वैदिक या पौराणिक युग, चतुरसेनशास्त्री के 'वैशाली का नगरवधू' में प्रागैतिहासिक काल, बृंदावनलाल वर्मा के 'गढकुंडार' राजपूतकालीन संस्कृति वर्णित हैं।

5. **उद्देश्य :-** हर एक उपन्यास का कोई - न कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। आरंभिक उपन्यास मनोरंजन, उपदेश, जिज्ञासा को जगाना आदि उद्देश्यों से लिखे गये थे। प्रेमचंद युगीन उपन्यास सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने की आदर्शवादी दृष्टि से लिखे गये। उनमें केवल समस्याओं का चित्रण ही नहीं हुआ, बल्कि उनका हल भी सुझाया गया। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' में वेश्या - समस्या के चित्रण के साथ - साथ उस समस्या को हल करने के लिए सेवासदान की स्थापना की आवश्यकता बतायी। आधुनिक उपन्यास मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखे जा रहे हैं।

6. **भाषा तथा शैली :-** आरंभिक उपन्यासों में भाषा के तीन रूप मिलते हैं - 1. संस्कृत गर्भित भाषा 2. व्यावहारिक भाषा और 3. उर्दू - प्रधान भाषा। प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यासों में उर्दू शब्दों की प्रचुरता दिखाई पड़ती है, लेकिन उनके बाद के उपन्यासों में सरल, सुबोध हिन्दी का रूप मिलता है। जैनेंद्र जी के उपन्यासों में सरल, सुबोध, संस्कृत गर्भित हिन्दी मिलती है। आज के उपन्यासों की भाषा संस्कृत गर्भित भाषा है। सरल वाक्यों का प्रयोग होता है। छोटे - छोटे शब्दों में विचारों की अभिव्यक्ति होती है।

शैली के ये सामान्य गुण होने चाहिए -

1. प्रसाद, ओज, माधुर्य का समावेश हो। 2. अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि का यथोचित प्रयोग हो।

हर एक उपन्यासकार की अपनी - अपनी शैली होती है। आरंभिक युग से लेकर आज तक के उपन्यासों को देखने से मालूम होता है कि शैली के रूपों एवं प्रकारों में अभिनव अंतर आया है। विभिन्न शौलियों के प्रकार यों हैं।

1. **कथात्मक शैली:** (अ) रहस्यात्मक शैली (आ) प्रेमाख्यात्मक शैली (इ) वर्णनात्मक शैली
2. **काव्यात्मक (भावात्मक) शैली:** (अ) रीति प्रधान (आ) भाव - प्रधान
3. **विश्लेषणात्मक शैली:** (अ) मनोवैज्ञानिकता युक्त (आ) यथार्थपरक (इ) आदर्शपरक
4. **फ्लेश - बैक शैली:** उपन्यास - साहित्य के वर्तमान विकास ने उपन्यास के उपर्युक्त तत्त्वों की परंपरा को बहुत अंश में निरर्थक कर दिया है। कालक्रम में इन तत्त्वों में बहुत परिवत्त्वर्तन आ गया है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 11

कहानी

प्र.1. कहानी की परिभाषा देकर उसके तत्वों की समीक्षा कीजिए।

ज. कहानी गद्य कथा - साहित्य का एक रूप है। यह अत्यन्त लोक प्रिय रूप है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यह रूप भी बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है। अंग्रेजी में जिसे शार्ट स्टोरी कहते हैं, वहीं बंगला में गल्प और हिन्दी में कहानी नाम से प्रचलित है। हिन्दी में भी गल्प शब्द का प्र॰ होता है। लेकिन कहानी शब्द ही अधिक प्रचलित है। कभी - कभी शार्ट स्टोरी के शब्दानुवाद रूप में इसे 'छोटी कहा ।' या लघु कथा कहा जाता है।

कहानी की परिभाषा :-

कहानी की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है। इसलिए नीचे कुछ परिभाषायें दी जाती हैं -

1. कहानी में किसी ऐसी छोटी घटना का वर्णन होना चाहिए कि उसे एक ही बैठक में पूर्णतः पढा जा सके। पर उसका प्रभाव पूर्ण और अन्तिम होना चाहिए।
2. कहानी में केवल एक ही सूचना होनी चाहिए और उसे तर्कपूर्ण ढंग से एक ही उद्‌देश्य की पूर्णता केलिए अग्रसर होना चाहिए।
3. कहानी में एक कथा होनी चाहिए, घटनाओं से परिपूर्ण बातों का संचयन होना चाहिए अप्रत्याशित रूप से चरमोत्कर्ष का सृजन होना चाहिए , अप्रत्याशित रूप से चरमोत्कर्ष का सृजन होना चाहिए और संतोष की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।
4. कहानी बिलकुल घुड़दौड़ के समान होती है, जिसमें प्रारंभ और अंत का अत्यधिक महत्व होता है।
5. कहानी लिखना रेल की पटरी पर दौड़ने के समान है।
6. कहानी बस कहानी होती है (जैनेद्रकुमार)
7. कहानी जीवन की एक संवेदना होती है, जिसका परिवेश सीमित होते हुए भी भावनुभूति की गहनता अत्यन्त महत्पूर्ण होती है। - (सुरेश सिन्हा)

कहानी के तत्त्व :- कहानी के भी उपन्यास की तरह ये तत्त्व माने जाते हैं - 1. कथानक 2. पात्र और चरित्र - चित्रण 3. कथोपकथन 4. वातावरण 5. उद्धेश्य और 6. भाषा तथा शैली।

ये तत्त्व सब कहानियों में होते हैं । परंतु एक कहानी में एक तत्व की प्रधानता हो तो दूसरी कहानी में दूसरे तत्व की। एक कहानी में कथावस्तु प्रमुख होती है तो दूसरी में चरित्र - चित्रण।

1. **कथावस्तु :-** कथावस्तु कहानी की रीढ़ होती है। हर कहानी में कोई न कोई कथावस्तु होती है। कहानी केलिए चुनी जानेवाली कथा ऐसी हो जो कम से कम समय में अपनी पूर्णता के साथ अभिव्यक्त की जा सके। कथावस्तु के लिए अधिक विस्तृत विषय नहीं लिया जाय। इसी प्रकार कथावस्तु का स्वाभाविक विकास नहीं हो सकता। ऐसी कथावस्तु न चुननी चाहिए जो पाठकों के लिए अरुचिकर हो।

   कथावस्तु का सुस्पष्ट होना, संतुलित होना और विषय - प्रतिपादन में पूर्ण होना बहुत आवश्यक है - कथावस्तु में यदि मानवीय अंतर्द्वन्द्व का चित्रण होता है तो उसमें और भी सूक्ष्मता आ जाती है। चरित्र प्रधान कथावस्तु में चरित्र की प्रधानता होने के कारण घट्नाओं को कम महत्व दिया जाता है। इसमें मानसिक अंतर्द्वन्द्व का चित्रण होता है। प्रेमचंद की 'बू काकी', भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'मिठाईवाली' कहानियों में इस प्रकार की कथावस्तु मिलती है।

   भाव प्रधान कथावस्तु में केवल भाव या अनुभूति को प्रधानता दी जाती है। उसमें घटनाओं या चरित्र केलिए कोई प्रधानता नहीं रहती।

   कथावस्तु ऐसी हो जो पाठकों की जिज्ञासा को आरंभ से अंत तक बनायी रख सकती है। कथावस्तु में उद्देश्य, कार्य - व्यापार और प्रभाव की परस्पर एकता हो।

2. **पात्र और चरित्र - चित्रण :-** कहानी का ज्यादा विस्तार नहीं होता। इसलिए उसमें पात्रों की संख्या बहुत कम होती है। उसमें कहानीकार किसी भी प्रकार के पात्र का चरित्र - चित्रण प्रस्तुत कर सकता। वह उच्च वर्ग या निम्न वर्ग के पात्र को ले सकता। कहानी में जिन पात्रों का चित्रण किया जाता वे स्वाभाविक हों, सजीव हों और सुलभ हों। पात्र ऐतिहासिक या पौराणिक भी हो सकते हैं।

   चरित्र - चित्रण वर्णन, संकेत, कथोपकथन तथा घटनाओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वर्णन - पद्धति में कहानीकार स्वयं किसी पात्र की चारित्रिक विशेषतायें बताता है। संकेत - पद्धति में कहानीकार पहले कुछ संकेत दे देता है फिर उसके साथ पात्र का संबंध जोड़ देता है। दो पात्रों के कथोपकथन से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। घटनाओं के आधार पर पाठक पात्रों के चरित्र को स्वयं समझ लेते हैं।

3. **कथोपकथन :-** कहानी में कथोपकथन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कथोपकथनों से कथावस्तु आगे बढती है। साथ ही पात्रों का चरित्र - चित्रण स्पष्ट होता है।

   प्रेमचंद की 'कफन' कहानी में धीसू और माधव का यह कथोपकथन देखिये -

   ''कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिये।''

   ''कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है।''

   ''और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिलते तो कुछ दवा - दारू कर लेते।''

   इससे कथा आगे बढ़ती है। साथ ही धीसू के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

4. **वातावरण :-** स्थिति और वातवरण का मूल कथा के साथ पूर्ण तदात्म्य होना आवश्यक है। इससे कहानी में स्वाभाविकता आती है और सत्यता का आभास होता है। ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियों में युगीन संस्कृति और जीवन का चित्रण ऐसा करना चाहिए कि पाठक उसका विश्वास कर सके।

5. **उद्देश्य :-** हर कहानी किसी न - किसी उद्देश्य से लिखी जाती है। सुधार, उपदेश, मनोरंजन, सिद्धांत - परिचय, वास्तविक स्थिति से अवगत कराना आदि उद्देश्यों से कहानियाँ लिखी जाती हैं।

6. **भाषा - शैली :-** कहानी में प्राण - संचार केलिए भाषा का सरस, सुबोध एवं प्रवाहमय होना आवश्यक है। शैली का तात्पर्य कहानी के प्रस्तुतीकरण से होता है। शैली के पाँच प्रकार हैं -

1. वर्णनात्मक 2. पत्रात्मक 3. आंत्मकथात्मक 4. डायरी और 5. मिश्रित। वर्णनात्मक शैलीं कहानीकार स्वयं कहानी सुनाता चलता है। पत्रात्मकशैली में कुछ पत्रों के माध्यम से सारी कथा कही जाती है। आत्मकथात्मक शैली में एक या अनेक पात्र अपनी कहानी सुनाते हैं। इसमें लेखक तटस्थ रहता है। डायरी शैली में किसी पात्र की डायरी के कुछ पृष्ठों के माध्यम से सारी कथा प्रस्तुत की जाती है। डायरी के पृष्ठ एक से अधिक पात्रों के भी हो सकते हैं। मिश्रत शैली में कई शौलियों का मिश्रण होता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 12

निबंध

प्र.1. निबंध के स्वरूप पर प्रकाश डालिये।

(अथवा)

निबध की परिभाषा देकर उसकी विशेषतायें बताइये।

ज. निबंध की ये व्युत्पत्तियाँ प्राप्त हैं -

(1) नि + बन्ध + ल्युट निबंध्यते अस्मिन् इति अधिकारणे निबंन्धनम्। अर्थात् जिसमें विचार बांधा जाये वह निबन्ध है।

(2) नि + बन्ध् + धञ् निश्चितायेन विषयम अधिकृत्य बन्धनम्। अर्थात् किसी निश्चित विषय पर विचार - श्रृंखला को निबंध कहते हैं।

(3) कोश में निबंध के ये अर्थ मिलते हैं। प्रारंभ, प्रयत्न, लेखयम्, लेख आदि।

परिभाषा :- हिन्दी में जिसे निबंध कहा जाता है, अंग्रेजीमें उसे ऐसे (Essay) कहा जाता है। 'ऐसे' की परिभाषायें इस प्रकार हैं -

1. निबन्ध विचारों, और उद्धरणों और व्याख्यानात्मक वृत्तों का सम्मिश्रण है। ..... अपने निबंधों का विषय मैं ही हूँ क्यों कि मैं स्वयं को ही सबसे अधिक जानता हूँ - मान्टेन
2. निबंध कुछ इने - गिने पृष्ठों के लघु विस्तार में होना चाहिए, जिसमें सारगर्भित ठोस विचारों का निर्देश हो और ये अधि विस्तार में प्रकट किये हुए नहीं हों। - बेकन
3. A loose sally of mind, an irregular indigested piece, not a regular and orderly performance - डॉ. जौनसन
4. निबंधकार एक चतुर आत्मवृत्त कहनेवाला व्यक्ति होता है, जिसका प्रत्येक वाक्य अपने व्यक्तित्व के ढंग का दर्शक हो - प्रीस्टले
5. साहित्यिक, दार्शनिक या सामाजिक विषय पर ऐतिहासिक या सामाजिक विषय पर ऐतिहासिक या वैयक्तिक दृष्टिकोण से लिखी हुई रचना को निबंध कहते हैं - एच. लाबन

हिन्दी के विद्वानों ने निबंध की परिभाषा इस प्रकार दी है -

1. "आधुनिक पाश्चात्य लक्षणों के अनुसार निबंध उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अथार्त् व्यक्तिगत विशेषता हो। .... निबंध लेखक अपने मन की प्रकृति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर - उधर छूटी हुई सूत्र - शाखाओं पर विचारता चलता है। यही उसकी .... व्यक्तिगत विशेषता है। ..... निबंध लेखक जिधर चलता है, उधर अपनी पूर्ण मानसिकता अर्थात् बुद्धि और भावात्मक हृदय दोनों को साथ लिए रहता है - आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

2. "निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन, एक विशेष निजीपत, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो" - गुलाबराय

3. "निबंध में कोई भी व्यक्ति अपने ही भाव की अभिव्यक्ति के लिए प्रयास करता है" - श्री पदुमालाल पुन्नालाल बख्शी

4. निबंध एक साहित्यिक और ललित गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी विचार या विषय से प्रभावित होकर अपनी भाषा में अपने भावों या विचारों की क्रिया तथा प्रतिक्रिया को ऐसे सजीव ढंग से व्यक्त करता हुआ पाठक की मनोवृत्तियों को सचेत करता है" - डा. बलवत लक्ष्मण कोतभिरे।

5. "निबन्ध वह साहित्य का रूप है जिसमें लेखक ने प्रतिपाद्य विषय के भीतर ही अपनी रुचि, भावना और विचारों की स्वच्छंद अभिव्यक्ति की है" - श्रीकृष्णलाल।

निबंध की विशेषतायें :-

1. वह आकार में छोटी गद्य - रचना के रूप में होता है। इसके कुछ अपवाद भी मिलते हैं। अंग्रेजी में Pope's Essay on man और हिन्दी में प. महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'हे कविते' पद्य के निबंध हैं। लोक (Lock) का दार्शनिक प्रबंध जो करीब 400 या 500 पृष्ठों का है, उसे लेखक ने Essay ही कहा है।

2. निबंध में लेखक का निजीपन और व्यक्तित्व झलकता रहता है। पुस्तक में लेखक अपने व्यक्तित्व को ओझल कर सकता है, परन्तु निबंध में ऐसा नहीं कर सकता। निबंध में लेखक जो कुछ लिखता है वह निजी मत के रूप में प्रकट करता है।

3. निबंध अधिक रोचक और सजीव होता है। निबंधकार साधारण विषय सजीव को भी अपनी प्रतिभा से रोचक और सजीव बनाता है। इसके लिए ध्वनि, हास्य, व्यंग्य लक्षण आदि का सहारा लेता है। दार्शनिक निबंध भी निबंधकार के हाथ में सजीव बनता है।

प्र.2. निबंध के प्रकार बताइये। निबंध प्रकार की शैलियों को सोदाहरण बताइये।

ज. निबंध के प्रकार :-

निबंध के प्रकारों की संख्या के बारे में विभिन्न मत हैं। बाबू गुलाबराय ने निबंध के चार प्राकर बताये तो डॉ. श्रीकृष्णलाल ने तीन भेदों का उल्लेख किया है। श्रीब्रह्मदत्त शर्मा ने निबंध के छः प्रकार बताये हैं। कुछ विद्वानों ने निबंधों के भेद दस तक पहुँचाई है।

निबंध के ये प्रकार सर्वमान्य हैं - 1. विचारात्मक 2. आलोचनात्मक 3. भावात्मक 4. वर्णनात्मक और 5. विवरणात्मक।

1. **विचारात्मक :-** विचारत्मक निबंध समास - शैली या व्यासशैली में लिखे जाते हैं। आचार्य रामचंदशुक्ल ने समास शैली में विचारात्मक निबंध लिखे। उन्होंने विचारात्मक निबंधों के बारे में इस प्रकार लिखाहै - ''शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरमोत्कर्ष वहीं कहा जा सकता है, जहाँ एक - एक पैराग्राफ में विचार दब - दबाकर ठूँसे गये हों और एक - एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्ड को लिए ही।'' परंतु व्यास - प्रधान शैली में वस्तु को उचित फैलाव के साथ समझा - समझाकर कहने की ओर झुकाव होता है।

   प. विश्वनाथप्रसाद के अनुसार, ''जिन निबंधों में बुद्धि और हृदय का समान योग हो वे शुद्ध विचारात्मक निबंध कहे जा सकते हैं।'' ये निबंध तर्क प्रधान होते हैं।

2. **आलोचनात्मक :-** इस निबंध का संबंध प्रस्तुत वस्तु के निरीक्षण और मूल्यांकन से रहता है।

3. **भावात्मक :-** ये राग या हृदय प्रधान होते हैं। ये व्यास शैली, धारा - शैली या विक्षेप - शैली में लिखे जाते हैं। आत्म विभोरता, रागात्मकता या काव्यत्व इन निबंधों की विशेषतायें हैं।

4. **वर्णनात्मक :-** ये कल्पना - प्रधान होते हैं। इनमें बुद्धि पक्ष की अपेक्ष हृदय - पक्ष की प्रधानता होती है। यात्रा संबंधी या प्रकृति संबंधी निबंध वर्णनात्मक होते हैं। ये व्यास - शैली में लिखे जाते हैं। चित्रात्मकता और वैयक्तिकता वर्णतात्मक निबंधों की विशेषतायें हैं।

5. **विवरणात्मक :-** इन निबंधों में अधिकतर घटमाओं का विवरण रहता है। जीवनी, कथायें पुरातत्व, अन्वेषण, इतिहास आदि पर विवरणात्मक निबंध व्यास - शेली में लिखे जाते हैं। ये निबंध वर्णनात्मक निबंधों की अपेक्षा अधिक चैतन्मय होते हैं।

निबंध शैलियाँ :- स्थूल रूप से निबंध - शैलियाँ इस प्रकार हैं -

1. **समास शैली :-** इसमें समासों की बहुलता होती है। इसके वाक्य विभक्तियुक्त तथा द्वित्व शब्दों के योग से बने होते हैं। जैसे - दुःख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करुणा का उल्टा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी भलाई का उद्वेग किया जाता है। - आचार्य रामचंद्र शुकल के 'करुणा' शीर्षक से।

2. **व्यास - शैली :-** यह समास शैली के बिलकुल विपरीत होती है। इसमें वस्तु को उचित फैलाव के साथ समझा - समझाकर कहने की ओर झुकाव होता है। जैसे -

''आरोग्य - रक्षा के नियम माँ - बाप को न मालूम रहने से उनके बाल - बच्चों को जो भोग भुगतने पड़ते हैं, उनकी जो दुर्गति होती है, उन पर जो आफते आती हैं उनका ठौर - ठिकाना नहीं। हजारों बच्चे तो माँ - बाप की असावधानी और मूर्खता के कारण पैदा होते ही मर जाते हैं। - आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ('शिक्षा' निबंध)

3. **सूत्र व्याख्या शैली :-** इसम पहले कुछ वाक्य सूत्र रूप में होते हैं और फिर उनकी व्याख्या की जाती है। जैसे - ''दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शांत प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था।'' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल ('मित्रता' निबंध)

4. **व्याख्या सूत्र शैली :-** इस में पहले व्याख्या की जाती है और बाद में सूत्र बताया जाता है। यह सूत्र व्याख्या शैली के विपरीत होती है।

5. **वार्तालाप शैली :-** यह वार्तालापों पर आधारित होती है। जैसे - मेरी जिज्ञासा एक प्रश्न में उभर आयी - ''क्यों क्या आप जवाहरलाल नेहरू से अपना जीवन बदलने को तैयार नहीं हैं ?'' पूरी तेजी में दोनों हाथ ऊपर उठाकर और मजे फैलाकर बोले - 'न, - न।'

मैं ने मन - ही - मन सोचा - इस जोरदार 'ना, ना' के पीछे डॉक्टर साहब अपनी हार को छिपा रहे हैं और पूछा - 'क्यों ?'

पूरी स्थिरता से बोले - 'जवाहरलाल के घर में कोई लड़का नहीं, मेरे घर में दो स्वस्थ - सुंदर कमाऊ बेटे हैं। फिर जवाहरलाल बूढे हैं मैं प्रौढ़ हूँ। भला मैं अपनी पूरी जिन्दगी उनसे कैसे बदल सकता हूँ ; आप ही बताइये।'

- कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (प्राप्त का सुख ! अप्राप्त का दुख' निबंध)।

6. **धारा शैली :-** इसमें सहज प्रवाह होता है। कही भी कोई रुकावट नहीं आती। इसमें मुहावरों और शब्द - मैत्री पर अधिक बल दिया जाता है . जैसे -

जो धीर हैं, जो उद्वेग रहित हैं, वे ही संसार में कुछ कर सकते हैं। जो लोहे की चादर की भाँति जरा ही में गर्म हो जाते और जरा ही में ठंडे पड़ जाते हैं, उनके लिए क्या हो सकता है, मसल है - जो बादल गरजते हैं वे बरसते नहीं।

- राय कृष्णदास ('धीर' निबंध)

7. **विक्षेप - शैली :-** इसमें वाक्य - गठन व्याकरण के अनुरूप न होकर, प्रभाव के आधार पर किया जाता है। अर्थात् जिस बात पर बल दिया जाता है, वाक्य में उसका प्रयोग पहले किया जाता है चाहे वह क्रिया ही क्यों न हो। जैसे -

''हाय अन्त हो गया, सर्वस्व लुट गया। पर प्रेमी, जीवन - यात्रा का एक - मात्र साथी सर्वदा के लिए छोड़कर चल बसा, भारत सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी सम्राज्ञी मुमताजमहल सदा के लिए इस लोक से बिदा हो गई।''

- डॉ. रघुवीर सिंह ('ताज' निबंध)

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 13

जीवनी

प्र.4. जीवनी के स्वरूप और विकास पर एक निबंध लिखिये।

ज. परिभाषा :-

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन - वृत्तांत को जीवनी कहते हैं। जीवनी अंग्रेजी में 'लाइफ' या बायोग्राफी कही जाती है। हिन्दी में जीवनी को जीवन - चरित या जीवन - चरित्र भी कहा जाता है। जीवनचरित के दोनों शब्दों को अलग करे तो जीवन के अंतर्गत व्यक्ति के स्थूल बाहय घटनायें आती हैं और चरित्र के अंतर्गत व्यक्ति की आंतरिक विशेषताओं का उल्लेख होता है। इसलिए जीवनी में व्यक्ति के अन्तर्बाह्य दोनों का लेखा होता है।

जीवनी का संस्मरण और इतिहास से संबंध :-

सामान्यतः जीवनी में मनुष्य के सारे जीवन में किये गये कार्यों का वर्णन होता है। उसमें नायक के सपूर्ण जीवन या उसके अधिकांश भाग की चर्चा होती है। साधारणतः अनेक लोगो की जीवनियाँ उनके जीवनकाल में ही लिखी जाती हैं। इसलिए जीवनियों में जिन्दगी भर का हाल है तो दूसरी ओर इतिहास। शिप्ले ने भी यही बात कही है - ''जीवनी में नायक के संपूर्ण जीवन या उसके यथेष्ट भाग की चर्चा की जाती है। उसमें उसके विशिष्ट इतिहास को प्रस्तुत किया जाता है।''

बहुत - सी जीवनियों में हमको इतिहास के सूत्र मिल जाते हैं। डॉ. श्यामसुंदरदास जी की आत्मकथा से नागरी प्रचारिणी सभा का इतिहास जुड़ा है। महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेद्रप्रसाद आदि की जीवनियों में स्वतंत्रता आदोलन का इतिहास मिलता है।

इन बातों पर जीवनीकार ध्यान दें :-

जीवनी कार को जीवनी लिखते समय इन बातों पर ध्यान देनाचाहिए -

(1) उसे अपने चरित्र - नायक के विषय में इतिहासकार की भाँति अन्वेषण और अनुसंधान करना चाहिए। परंतु जो बातें इतिहासकार केलिए अनावश्यक होती हैं, वे जीवनीकार केलिए आवश्यक हो जाती हैं। इसमें वह उपन्यासकार का साथी है।

वह उपन्यासकार की भाँति छोटी - छोटी बातों पर भी ध्यान देता है। जैसे - हँसी मजाक, जादू - टोने, भूत - प्रेत में विश्वास, कपड़ों की लापरवाही या अधिक परवाह, सिगरेट या बीड़ी में किसको अधिक पसंद करता, भाँग या अन्य नशीले पदार्थों के प्रति मोह, कन्धों का हिलाना, पलकों का जल्दी - जल्दी मारना, सिर खुजलाना, तेज चलना इत्यादि।

(2) जीवनीकार को चरित्र नायक के चरित्र को स्वाभाविक रूप से निर्मित करना चाहिए। इसलिए नायक के जीवन का क्रमशः अन्वेषण और उद्‌घाटन करना आवश्यक होता है। प्रारंभ से ही नायक में महता और विलक्षणता के दर्शन करते रहना अच्छा नहीं होता।

(3) जीवनीकार को नायक के जीवन के सभी तथ्यों की जानकारी कर लेनी चाहिये जिन्होने उनके जीवन पर प्रभाव डाला हो।

(4) जीवनीकार को नायक के जीवन की घटनाओं को उसी क्रम में प्रस्तुत करना चाहिये जिसमें कि वे घटित हुई थीं।

(5) जीवनीकार में सहानुभूति होनी चाहिए। सहानुभूति दोष को दोष ही समाझती है। परंतु उसके कारण दोषी की हँसी नहीं उड़ायी जाती।

(6) स्ट्रेची के अनुसार जीवनीकार को यह बात सदा ध्यान में रखनी है कि कोई अनावश्यक बात न आने पाए और न कोई आवश्यक बात छोड़ी जाय।

(7) स्ट्रेची का बताया हुआ दूसरा गुण यह है कि जीवनीकार को अपनी स्वतंत्रता न खो देनी चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवनीकार छिद्रान्वेषण को ही अपना ध्येय बना ले।

(8) जीवनीकार को निरपेक्ष होकर लिखना चाहिए।

(9) कभी - कभी जीवनीकार का जीवन चरित्रनायक के जीवन से इतना सम्बद्ध हो जाता है कि नायक की जीवनी के साथ जीवनीकार की जीवनी भी आ जाती है। परंतु उसमें भी लेखक को अपनी गौणता न भूलनी चाहिये।

(10) जीवनीकार को शैली का महत्व भी ध्यान में रखना चाहिये। शैली साधारण चरित्र - नायक की जीवनी को भी आकर्वित कर देती है।

जीवनी की सामग्री के स्रोत :-

1. उसी विषय अथवा सम्बद्ध विषयों पर पहले लिखी गयी पुस्तकें
2. मूल सामग्री, जैसे - पत्र, डायरी या अधिकृत गवेषणा - सामग्री
3. समकालीनों के संस्मरण
4. यदि वर्ण्यसमय बहुत पहले का नहीं है तो जीवित व्यक्तियों की यादगारें
5. जीवनीकार यदि अपने चरित नायक के सपर्क में रहा है तो उसके अपने संस्मरण। यथा, वासवेल। उन स्थलों का भ्रमण तथा पर्यवेक्षण जहाँ चरितनायक रहा था।

आत्मकथा :- आत्मकथा जीवनी का और एक प्रकार है। दोनों में अंतर इतना ही है कि जीवनी कोई दूसरा आदमी लिखता है तो आत्मकथा स्वयं लिखी जाती है।

जीवनी साहित्य का विकास :-

हमारे देश में जिस प्रकार इतिहास लिखने की परंपरा नहीं रही, उसी प्रकार जीवन - चरित लिखने की भी परंपरा नहीं थी। पुराणों, महाकाव्यों, नाटकों आदि में महापुरुषो, राजाओं, वीरों आदि का वर्णन अवश्य होता था, पर वह वर्णन अतिरंजित और अतिप्राकृत होता था।

पाश्चात्य देशें में जीवनी - साहित्य की बहुत अधिक उन्नति हुई है। यूनान में प्लूटार्क की जीवनियाँ ईसा की पहली शताब्दी के पूर्व ही लिखी गयी। प्लूटार्क जीवनीकारों का राजा माना जाता है । पाश्चात्य देशों में जीवनी के क्षेत्र में नये - नये प्रयोग किये गये हैं। जैसे - लुडविग ने नाइल नदी की जीवनो लिखी है।

हिन्दी में जीवनी - साहित्य का आरंभ चौरासी वैष्णवों की वार्ता और नाभादास के भक्तमाल से होता है। इनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है। इनमें सांप्रदायिक महत्ता का पुट आ गया है।

अकबर के समय के आगरा - निवासी जैन कवि बनारसीदास जी ने अपनी आत्मकथा 'उर्दू कथानक' नाम से लिखी है। उसमें उन्होंने अपनी बुराईयों और कमजोरियों का निस्संकोच भाव से उद्‌घाटन किया है।

प्रतापनारायण मिश्र की आत्मकथा अधूरी ही रही। गोस्वामी जी ने अपनी जीवनी में बताया है कि उनको अपने स्वतंत्र विचारों केलिए बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

अव धीरे - धीरे हिन्दी का जीवनी - साहित्य बढ़ता जा रहा है। देखिये -

जीवनीकार का नाम	जीवनी का नाम
बनारसीदास जी चतुर्वेदी	पं. सत्यनारायण की जीवनी
डॉ. श्याम सुंदरदास	मेरी आत्मकहानी
श्री ब्रजरत्नदास	भारतेंदु
श्रद्धानंदजी	कल्याण मार्ग के पथिक
भाई परमानंद जी	आप बीती
श्री वियोगी हरि	मेरा जीवन प्रवाह
श्री घनश्यामदास बिड़ला	बापू
श्री श्यामनारायण कपूर	भारतीय वैज्ञानिक

श्री मन्नारायण अग्रवाल	सेवा गाँव का संत
श्री गौरीशंकर चटर्जी	हर्षवर्द्धन
श्रई रूपनारायण पांडेय	सम्राट अशोक

विदेशी विभूतियों में कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, मेजनी, प्रिन्स बिस्मार्क, हिटलर आदि की जीवनियाँ निकल चुकी हैं। आजकल राजनीतिक नेताओं के बारे में अधिक जीवनियाँ लिखी जा रही हैं। श्री सुभाषच्न्द्र बोस के बारे में अनेक जीवनियाँ लिखी जा रही हैं। महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इंदिरागाँधी आदि की जीवनियाँ निकल चुकी हैं।

यात्रा की पुस्तकों से भी किसी व्यक्ति के जीवन का परिचय मिलता है।राहुल सांकृत्यायन के 'तिब्बत में तीन वर्ष' और 'सोवियत भूमि' तथा मौलवी महेशप्रसाद से लिकित 'मेरी ईरान यात्रा' आदि यात्रा की पुस्तकें हैं।

Lesson Writer

कोन लावण्या

पाठ - 14

पत्र

प्र.5. पत्र. - साहित्य के स्वरूप और विकास पर प्रकाश डालिये। (Short Notes Question)

ज. हिन्दी में पत्र शब्द का प्रयोग अनेक संदर्भों में किया जाता है। अखबार को समाचारपत्र कहते हैं। मैगजीनों को साहित्यिक पत्र, राजनीतिक पत्र या धार्मिक पत्र कहा जाता है। परन्तु यहाँ पत्र लेटर के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

पत्रों के उपयोग :- पत्रों के ये उपयोग हैं -

1. लेखक के वैयक्तिक संबंध, उनके मानसिक और बाह्य संघर्ष, उसकी रुचि, उस पर पड़नेवाले प्रभावों का हमें पता चल जाता है।
2. पत्रों में कभी - कभी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक इतिहास की झलक मिलती है।
3. जिन पत्रों के विषय और शैली दोनों महत्वपूर्ण हो वे साहित्य की संपत्ति बन जाते हैं।

पत्रों की विशेषतायें :-

1. पत्र व्यक्ति द्वारा लिखे जाते हैं और वे व्यक्ति के लिये ही होते हैं। कभी - कभी वे जनसाधारण के लाभ या मनोरंजन की भी वस्तु हो जाते हैं।
2. उनमें साहित्य कीअन्य विधाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व की झलक अधिक रहती है।
3. पत्र - लेखक, पत्र - ग्राहक के व्यक्तित्व और उसकी संवेदनशीलता से परिचित रहता है। इसलिए वह उसी केअनुकूल पत्र लिखता है। वह कभी संधर्ष के लिए और कभी पारस्परिक जीवन को सुसंपन्न बनाने के लिए पत्र लिखता है। कुशल साहित्यिकों में यह विशेषता होती है कि वे थोड़े - से - थोड़े शब्दों में अपने भावों या विचारों को प्रकट करते हैं।
4. पत्र में असीमित लंबाई केलिए गुंजाइश नहीं रहती। इसलिए कल्पना केलिए स्थान नहीं रहता।
5. बात को थोड़े शब्दों में अधिक - से - अधिक स्पष्टता देना पत्र की स्बसे बड़ी माँग है।
6. पत्र लिखनेवाले को इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि दूरस्थ पाठक पर उसका उतना ही प्रभाव पड़े जितना कि सामने वार्तालाप करने पर पड़ता है।
7. पत्र दो प्रकार के होते हैं - 1. निजी और 2. सार्वजनिक। सर्वजनिक पत्र किसी व्यक्ति के नाम लिखे जाने पर भी उनके लेखक का यह उद्देश्य रहता है कि सब उन्हें पढ़े। ऐसे पत्रों में लेखक किसी विषय का विवेचन करता है या कोई उपदेश, सलाह या संदेश देता है।

हिन्दी पत्र - साहित्य :-

हिन्दी में बहुत कम पत्र - साहित्य पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। परंतु पत्र - पत्रिकाओं में महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र उद्धृत किये जाते हैं। इतना ही नहीं, पाठकों द्वारा संपादक के नाम पर लिखे जानेवाले पत्र भी प्रकाशित होते हैं।

हिन्दी के पत्र - साहित्य में ख्याति - प्राप्त पत्रों में बालमुकुंद गुप्त 'शिवशंभु के चिट्ठे' (भारतमित्र पत्रिका में प्रकाशित) और विश्वंभरनाथ शर्मा कौसिक के 'दुबे जी की चिट्ठी' (ताँद पत्रिका में प्रकाशित) प्रमुख हैं। बालमुकंद गुप्त ने 'शिवशंभु के चिट्ठे' तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन के नाम पर लिखे थे। इनमें वायसराय की कड़ी आलोचना की गयी थी। इन पत्रों ने पाठकों में तहलका मचा दिया था। महात्मा गाँधी द्वारा लिखे गये पत्र भी गाँधी - स्मारक - निधि द्वारा प्रकाशित हैं। पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्र पं. हरिशंकर शर्मा के संपादकत्व में प्रकाशित हुये हैं।

उग्र जी ने अपना उपन्यास 'चन्द हसीनों के खतूत' को पत्रों में ही लिखा है। पं. जवाहरलाल नेहरू के पत्रों का अनुवाद, डा. धीरेंद्र वर्मा के पत्र, भदन्त आनंद कौसल्यायन जी के 'भिक्षु के पत्र', सुमन जी के 'भाई के पत्र' पुस्तक के रूप में प्रकाशित हैं। सुमन जी के पत्रों में नारी समस्या पर प्रकाश डाला गया है। श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर ने 'पत्नी के पत्र' में नारी समस्याओं का चित्रण किया है। पं. महावीरप्रसाद के पत्र भी प्रकाशित हैं। उनमें व्यवहार की स्पष्टता अधिक है।

Lesson Writer

कोन लावण्या

पाठ - 15

एकांकी

प्र.6. एकांकी का परिचय दीजिए। (Short Notes Question)

एकांकी नाटक का उद्देश्य :- नाटक देखने केलिए कुछ लोग देर से आया करते थे। समय पर आनेवाले लोगों को खाली बिठाना अन्याय था। उन लोगों के मनोविनोद केलए प्रधान नाटक के आरंभ में छोटे - छोटे नाटकों का प्रदर्शन होने लगा। ये बहुत लोकप्रिय हुये। आधुनिक एकांकी नाटकों का उदय इन्हीं से हुआ।

ये एकांकी नाटक समय की बचत करनेवाली मनोवृत्ति के अनुकूल हैं। आजकल के पेचीदा जीवन में समय का अपेक्षाकृत अभाव है। इसलिए लोग इनको अधिक पसंद करने लगे। संस्कृत में भाण, अंक, व्यायोम, वीथी, प्रहसन एकांकी नाटक ही थे। प्रारंभ के नाटक भारतीय प्राचीन आदर्शों के अनुकूल रचे गये। परंतु बाद के नाटकों में पाश्चात्य शिल्पकला का ज्यादा प्रभाव है।

एकांकी नाटक में कहानी की सी एकतथ्यता रहती है। पात्र भी अपेक्षाकृत कम होते हैं। संकलनत्रय का भी कुछ अधिक सुविधा के साथ पालन होता है। हिन्दी में एकांकी नाटक की रचना पहले - पहल भारतेंदु युग के लेखकों ने की। इस समय के लेखकों ने प्रायः ईश्वरभक्ति, समाज - सुधार और राष्ट्रीयता को लेकर एकांकी नाटकों की रचना की।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने वैदिकी हिंसा न भवति, धनंजय विजय, अंधेर नगरी आदि एकांकी नाटक लिखे। काशीनाथ खत्री ने सिंधुदेश की राजकुमारियाँ और लवजी का स्वप्न नामक एकांकियाँ लिखी। श्री राधारमण गोस्वामी, लाला श्रीनिवासदास, प्रेमधन, पं. अंबिकादत्त व्यास आदि ने कई एकांकी नाटक लिखे हैं।

हिन्दी के एकांकी साहित्य का वास्तविक प्रारंभ श्री जयशंकर प्रसाद की 'एक घूँट' से होता है। हिन्दी के एकांकी साहित्य पर बंगला के बाबू द्विजेंद्रलाल राय तथा अंग्रेजी के इब्सन और बनार्डशा की कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रसिद्ध एकांकीकार	**एकांकी संग्रह**
डॉ. रामकुमार वर्मा	बादल की मृत्यु, पृथ्वीराज की आँखें, सप्तकिरण, चारुमित्रा
सेठ गोविंददास	सात रश्मि, चतुष्पथ, पंचभूत
श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क'	देवताओं की छाया में, तूफान से पहले
श्री उदयशंकर भट्ट	अंधकार और प्रकाश, समस्या का अंत
श्री जगदीशचंद्र माथुर	भोर का तारा
श्री विष्णु प्रभाकर	इन्सान, क्या वह दोषी था ?

Lesson Writer

कोन लावण्या

पाठ - 16

रिपोर्ताज

प्र.7. रिपोर्ताज क्या है, समझाइए। (Short Notes Question)

रिपोर्ताज गद्य साहित्य की एक नवीन विधा है। यह फ्रेंच शब्द है। अंग्रेजी में इसे 'रिपोर्ट' कहते हैं। इसमें किसी घटना का यथातथ्य वर्णन किया जाता है। इसमें लेखक अपनी प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तु - स्थिति की रिपोर्ट (आख्या) प्रस्तुत करता है। जब इस रिपोर्ट में साहित्यिक कलात्मकता का समावेश किया जाता है तो वह साहित्यिक विधि रिपोर्ताज बन जाती है। यह विधा यूरोप में युद्ध क्षेत्र में अंकुरित हुई और वही विकसित हुई।

हिन्दी में सर्वप्रथम इस विधा का आरंभ करने का श्रेय 'हंस' पत्रिका को है। इसमें 'समाचार और विचारशीर्षक के अन्तर्गत रिपोर्ताज से संबधित सामग्री प्रकाशित होती थी। अब अनेक पत्र - पत्रिकाओं और आकाशवाणी द्वारा इस विधा को प्रोत्साहन मिल रहा है। यह आजकल बहुत लोकप्रिय बन गयी है। इस विधा के अग्रगण्य लेखक हैं - शिवदानसिंह चौहान, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, भगवतशारण उपाध्याय, जगदीशचन्द्र जैन, अमृतलाल नागर, प्रभाकर माचवे, अमृतराय, धर्मवीर भारती आदि।

Lesson Writer

कोन लावण्या

पाठ - 17

आत्मकथा

प्र.8. आत्मकथा का संग्रह रूप बताइए। (Short Notes Question)

आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का संबद्ध वर्णन है। आत्मकथा जीवनी का एक प्रकार है। दोनों में केवल इतना ही अंतर होता है कि जीवनी कोई दूसरा आदमी लिखता है जबकि आत्मकथा स्वयं लिखी जाती है।

डायरी जर्नल, संस्मरण, पत्र आदि आत्मकथा के ही स्फुट रूप हैं। आत्मकथा लिखने में लेखक के ये उद्देश्य होते हैं -

1. लेखक आत्मकथा द्वारा आत्म - परिष्कार एवं आत्मोन्नति करना चाहता है।
2. अपनी पद - मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की इच्छा होती है।
3. आगामी युगों को अपने युग की घटनाओं की प्रामणिक रचना छोड़ने की प्रबल आकांक्षा हो सकती है।

साधारण जीवनी की अपेक्षा आत्मकथा की एक खास विशेषता होती है। वह यह कि आत्मकथाकार जितना अपने बारे में जान सकता है उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता। परंतु आत्मकथा में ये दोष हैं - 1. यदि लेखक में आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति हो तो सही जानकारी नहीं मिलती। 2. किसी - किसी लेखक में शील - संकोच का स्वभाव होता है। ऐसी स्थिति में आत्मप्रकाशन में रुकावट पड़ती है।

आत्मकथा लिखते समय लेखक को अपने गुण कहने में सचेत रहना चाहिये। काउली ने आत्मकथा के संबंध में महत्वपूर्ण बातें कही हैं - "किसी आदमी को अपने बारे में खुद लिखना मुश्किल भी है और दिलचस्प भी क्योंकि अपनी बुराई या निंदा लिखना खुद हमें बुरा मालूम होता है और अगर हम अपनी तारीफ करें तो पाठकों को उसे सुनाना गर्व मालूम होता है।"

जीवनीकार की अपेक्षा आत्मकथा लेखक को ऊब से बचाने के संबंध मे अधिक ध्यान देना पड़ना है। उसे अपनी रचना को रोचक बनाना पड़ता है।

Lesson Writer
कोन लावण्या

पाठ - 18

रेखाचित्र

प्र.9. रेखाचित्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

रेखाचित्र के सम्बन्ध में काफी मतभेद हैं। कोई उसे निबंध की सीमा में रखना चाहता है तो कोई कहानीऔर संस्मरण की सीमा में। कोई उसे गद्य - काव्य के अन्तर्गत रखना चाहता है तो कोई उसे एक पृथक विधा के रूप में अंग्रेजी शब्द 'स्केच' का पर्याय मानता है।

आज अनेक समीक्षक 'रेखाचित्र' को एक अलग गद्य - विधा स्वीकार करते हैं। इसे 'शब्द चित्र' भी कहा जाता है। इस विधा में लेखक अपने किसी एक विशेष दृष्टिकोण से किसी विलक्षण व्यक्तित्व को शब्द - रेखाओं द्वारा इस प्रकार उसका मर्मस्पर्शी स्वरूप पाठकों के मानस पटल पर अंकित हो जाता है।

हिन्दी रेखाचित्रों का बाहुल्य नहीं तो अभाव भी नहीं है। पं. पद्मसिंह शर्मा के कुछ रेखाचित्र 'पद्मपराग' में संग्रहीत हैं। रामवृक्ष ने मिट्टी की मूरत में उपेक्षित लोगों के चित्र खींचे हैं। गुलाबाराय ने 'मेरे नापिताचार्य' में अपने नाई का रेखाचित्र खींचा है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अनेक प्रसिद्ध लोगों के चित्र खींचे हैं। श्री प्रकाशचंद्र गुप्त के पीपल, खंडहर, मिट्टी के पुतले आदि रेखाचित्र बड़े कलापूर्ण हैं। महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' हिन्दी साहित्य के लिए बडी देन है।

Lesson Writer

कोन लावण्या

पाठ - 19

संस्मरण

प्र.10. संस्मरण का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

संस्मरण में किसी घटना, किसी स्थान, किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या किसी यात्रा से सम्बन्धित मधुर स्मृतियाँ सजीव ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं . संस्मरण में मधुर स्मृतियों का आधार वास्तविक होता।

हिन्दी के प्रारंभिक संस्मरण - लेखकों में पद्मसिंह शर्मा प्रमुख हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी की 'संस्मरण' तथा 'हमारे अपराध' कृतियों में उनके जीवन के विविध संस्मरण आकर्षक शैली में लिखे गये हैं। महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मति की रेखाये' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरते' में साधारण पात्रों के सजीव चित्र हैं।

देवेंद्र सत्यार्थी नें क्या गोरी, 'क्या सौवरी' और 'रेखायें बोल उठी' में संस्मरणों को भावुक शैली में अंकित किया है। भदन्त आनंद कौसल्यायन ने 'जो भूल न कसा' और 'जो लिखना पड़ा' में अपने यात्र - जीवन की विविध घटनाओं और पात्रों के संस्मरण प्रस्तुत किये। शांतिप्रिय द्विवेदी के 'पथचिह्न और 'परिव्राजक की प्रजा' तथा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के 'भूले हुये 'चेहरे उल्लेखनीय संस्मरण हैं'।

Lesson Writer

कोन लावण्या

अनुक्रमणिका

द्वितीय भाग : पाश्चात्य काव्य - शास्त्र

1.	प्लेटो का आदर्शवाद	1.1 - 1.4
2.	अरस्तू के काव्य सिद्धान्त	2.1 - 2.5
3.	लोंजाइनस का औदात्य सिद्धान्त	3.1 - 3.3
4.	क्रोचे का अभिव्यंजनावाद	4.1 - 4.4
5.	आई. ए. रिचर्ड्स के काव्य सिद्धान्त	5.1 - 5.3
6.	टी. एस. इलियट के काव्य सिद्धान्त	6.1 - 6.4
7.	मार्क्सवाद	7.1 - 7.4

पाश्चात्य काव्य - शास्त्र

पाठ - 1

प्लेटो का आदर्शवाद

1. यूनान - ल्पेटो काआदर्शवाद।

(अथवा)

प्लेटो के दर्शनिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक विचार प्रस्तुत कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. दार्शनिक विचार
3. राजनीतिक विचार
4. साहित्यिक विचार
5. मिथ्यावाद पर आक्षेप
6. आधार रहित वाद
7. अनुपयोगी तर्क
8. अनाचार के कारणः सामाजिक भ्रष्टता
9. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

पूनान (ग्रीक) पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता की जननी माना जाता है। ईसा के चार - पाँच शताब्दियों के पूर्व ही यहाँ अनेक दार्शनिक विचारक तथा साहित्यिक चिन्तकों का जन्म हुआ था। यूनान के महान चिन्तकों और दर्शनिकों में ल्पेटो का

नाम सर्वोपरि है। वे सुकरात (सोक्रटीस) के शिष्य थे। उनका जन्म - स्थान एथेन्स था। वे वहीं एक विद्यालय की स्थापना करके अध्यापन करते थे। देशविदेशों में भ्रमण करके प्लेटो ने अनेक दार्शनिक, साहित्यिक तथा राजनीतिक विषयों का समग्र अध्ययन किया। सुकरात के शिष्य होने के कारण उनके विचार मौलिक तथा प्रभावशाली होते हैं। उन्होंने द रिपब्लिक (गण राज्य), स्टेट्समन (राजनेता) तथा द लाज (विधि) ग्रन्थों में अपने विचार प्रस्तुत किये।

प्लेटो ने दर्शन, राजनीति और साहित्य पर अपने विचार प्रस्तुत किये थे।

2. दार्शनिक विचार :-

दर्शन का चरम लक्ष्य सत्य की खोज है। सत्य का विवेचनात्मक अनुशीलन दर्शन, कहलाता है।

प्लेटो के अनुसार यह सारा संसार किसी अलौकिक सूक्ष्म तथा परोक्ष शक्ति के आधार पर चलता है। इसे परमात्मा भी कह सकते हैं । ऐसा मानने वाले आदर्शवादी कहलाते हैं। प्लेटो के विचार इसी आदर्श पर आधारित हैं। कुंछ लोग इस भौतिक जगत को ही सत्य मानते हैं। ऐसा मानने वाले यथार्थवादी हैं।

प्लेटो के अनुसार भौतिक जगत मिथ्या है जहाँ अलौकिक तथा सूक्ष्म तत्त्व सत्य है। यह सारा जगत उस सूक्ष्म तत्त्व की प्रतिच्छाया है [Reflection]। सृष्टि का निर्माण उस अलौकिक परमात्मा के विचारों [ideas] के अनुसार हुआ है। संसार मिथ्या होने के कारण यहाँ की सारी वस्तुयें मिथ्या हैं, अशाखत हैं और महत्वहीन हैं।

प्लेटो का आदर्शवाद भारतीय अद्वैत दर्शन के समकक्ष [Equal] रखा जा सक्ता है -

(ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या ; सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।)

3. राजनीतिक विचार :-

प्लेटो के समय यूनान की राजनीति बिलकुल अस्थिर की दशा में थी। स्वयं प्लेटो के नगर में प्रजातंत्र की व्यवस्था डावाँडोल में (Confusion) थी। राजनीति अदूरदर्शी, सवार्थी तथा विलासी धनवानों के अधीन हो गई। गणतंत्र का नाम मूर्खों का शासन बन गया है। अपने गुरु सुकरात को दण्ड दिये जाने की प्रतिक्रिया प्लेटो के मन में तीव्र रूप में बैठ गई थी।

सामाजिक विचार (Common Thinking):-

फलतः प्लेटो एक सदाचारी और कर्मठ सत्यवेत्ता को गणराज्य के शासक के रूप में देखना चाहते थे। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'द रिपब्लिक' ग्रन्थ में गणराज्य पर विचार प्रस्तुत किये। इस के अनुसार **सात से बीस वर्ष** तक उम्र वाले बुद्धिमान छात्रों को सैनिक शिक्षा दी जाए। फिर उन में से उच्च स्तर के छात्रों को शासक वर्ग में लिया जाना चाहिए। शासक वर्ग में जो सर्वोच्च स्तर का सिद्ध हो उस विशिष्ट छात्र या व्यक्ति को राजा या शासक बनाया जाय। यहाँ प्लेटो ने शाक्षक की बुद्धिमत्ता पर जोर दिया।

बुद्धिमान कभी स्वार्थी भी हो सकता है और धन - संपति का लोलुप। लोलुपता का प्रधान कारण परिवार है। इसलिए शासक का कोई परिवार न रहे। अतः शासक के लिए विवाह निषिद्ध किया जाय।

फिर प्रश्न उठता है कि - मानव कामजनित है। अतः अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए अस्थायी रूप से किसी स्त्री के साथ वह यौन सम्बन्ध रख सकता है। लेकिन विवाह नहीं कर सकता। विवाह करने से परिवार, परिवार के कारण स्वार्थ और स्वार्थ के कारण लोलुपता बढ़ते जायेंगे। इसलिए राजा या शासक को वैवाहिक जीवन निषिद्ध किया जाय।

प्लेटो के अनुसार राज्य में सत्य, न्याय, धर्म और सदाचार की पूर्णतया प्रतिष्ठा हो। इस के लिए सत्य, न्याय, धर्म और सदाचार युकत शासक की आवश्यकता होती है।

4. साहित्यिक विचार :-

प्लेटो के अनुसार साहित्य का सृजन समाज के हित के लिए हो। साहित्य का लक्ष्य सौन्दर्य या आनन्द नहीं। सत्य, न्याय, तथा सदाचार से समन्वित सौन्दर्य की ओर या आनन्द की ओर न दौडे। उनके अनुसार स्वर्ण घटित ढ़ाल से गोबर की कोठरी सुन्दर है। गोबर में समाज का हित है। इसलिए साहित्य की सृष्टि में समाज का उपयोग होना चाहिए।

5. मिथ्यावाद पर आक्षेप :-

प्लेटो ने साहित्य को मिथ्या जगत की 'मिथ्या अनुकृति' [Imitation] माना है। साहित्यकार साहित्य का सृजन संसार तथा प्रकृति के आधार पर करता है। साहित्य और समाज का घना सम्बन्ध है।

प्लेटो के अनुसार सारा जगत मिथ्या है। यह भौतिक जगत भ्रमात्मक तथा मिथ्या है। साहित्य की रचना इस मिथ्या जगत को आधार बनाकर करनी है। मिथ्या जगत की, अनुकृति {Imitation] भी मिथ्या होनी चाहिए। तब साहित्य की महत्ता नहीं रहती।

कला एक आनन्द की लहर हैं। मानव आत्मानुभूति से कला का सृजन करता है। वह कला अगर मिथ्या हो, तो उस से उत्पन्न होने वाली उपयोगिता भी मिथ्या है। इस प्रकार इस मिथ्यावाद के भ्रम के कारण प्लेटो स्वयं अव्यवस्थित स्थिति में गिर गये हैं।

परमात्मा सत्य है - ब्रह्म सत्यं

यह जगत परमात्मा से आया हुआ है। इसलिए जगत भी सत्य होना चाहिए। अतः प्लेटो का मिथ्यावाद भ्रमात्मक है।

6. आधार रहितवाद :-

प्लेटो सदा साहित्य में उपयोग की दृष्टि रखते हैं । उपयोगिता किसी कारीगर का काम है, कवि का नहीं।

उदाहरण के लिए :-

एक मोची अपने अनुभव के बल पर चमडा ले आता है और कला के आधार पर वह तरह - तरह के जूते तैयार करता है। वह कविता या कला का स्वरूप नहीं जानता। लेकिन उस से बने हुए जूते कलात्मक होते हुए भी उपयोगी हैं। लेकिन कवि

मोची की कारिगरी का वर्णन उसी प्रकार नहीं कर पाता क्यों कि वह मोची की कारीगरी नहीं जानता। इसी प्रकार कवि चित्रकार, बढ़ई, बुनकर आदि नहीं बन सकता।

7. अनुपयोगिता तर्क :-

कवि या साहित्यकार अनुकृति (Imitation) के बल पर साहित्य का सृजन करता है। अनुकृति में यथातथ्य विषय का ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जब ज्ञान ही पूर्ण नहीं है तो अनुकृति पर आधारित साहित्य पूर्ण रूपेण हो नहीं पाता। इसलिए अनुकृति में उपयोगिता को ढूँढ़ना एक प्रकार का भ्रम है। उस युग में होमर महान कवि था। उपयोगिता के भ्रम में पडकर ल्पेटो उनकी कविता को भी नही मानते थे।

साहित्यकार अपनी रचना में विविध विषयों की झाँकी करता है। प्लेटो साहित्यकार में एक चिकित्सक को, एक शासक को, कारीगर, योद्धा, नेता आदि को देखना चाहते हैं। यह नितान्त भ्रम तथा अनुपयोगिता (Un Useful) है।

8. अनाचार के कारण सामाजिक भ्रष्टता :-

प्लेटो के अनुसार राजा या शासक का कोई परिवार न हो। अगर राजा अपनी वासना को तृप्त करने के लिए अस्थाई भाव से किसी स्त्री के साथ व्यवहार करेगा तो यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार प्रजा भी राजा का अनुकरण करेगी। फलतः राज्य में अनाचार और भ्रष्टत्व की व्याप्ति होगी। कवि का काम समाज का हित करना है। लेकिन उपर्युक्त रचनाएं करने से कवि कर्म से लोक का हित न होगा और लोक का अनहित होगा।

9. उपसंहार :-

प्लेटो की भावना तो पवित्र और महत्वपूर्ण है। लेकिन व्यावहारिक रूप से दोषयुक्त है। प्लेटो भगवान को सत्य मानते हैं और भगवान से निर्मित यह जगत मिथ्या मानते हैं। फिर काव्य तो मिथ्या जगत की ही अनुकृति है। तब साहित्य सत्य कैसे हो सकता है और साहित्य समाज का हित कैसे कर सकला है। इस प्रकार रचित काव्य पर शास्त्र का निर्माण कैसे कर सकला है ।

प्लोटो ने प्रायः नारी को प्रगति मार्ग पर बाधा या आतंक माना होगा। इसलिए उन्होंने विवाह को उच्च स्तर पर नहीं माना । लेकिन नारी, पत्नी के रूप में पुरुष की सहायता विविध प्रकार से कर सकती है। इसलिए पत्नी को अर्धांगी कहा गया है। काव्य भी - ''कान्ता सम्मित'' होने पर श्रेष्ठ बनता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 2

अरस्तू के काव्य सिद्धान्त

2. अरस्तू के काव्य सिद्धान्त की चर्चा कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. अनुकृति सिद्धान्त
   (a) अनुकृति - विधि
   (b) काव्य में अनुकृति का महत्त्व
   (c) अनुकृति सिद्धान्त की समीक्षा
3. विरेचन सिद्धान्त
   (a) विविध विद्वानों के मत
   (b) अभिनवगुप्त का सामंजस्य
   (c) काव्य रूपों का विवेचन
4. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

पाश्चात्य काव्य शास्त्र में दार्शनिक अरस्तू का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे महान दार्शनिक प्लेटो के शिष्य थे और विश्वविजेता सिकन्दर (अलेकजैण्डर) के गुरु थे। उन्होंने तर्क शास्त्र, भौतिक शास्त्र, मनोविज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीति शास्त्र, आचार शास्त्र, काव्य शास्त्र आदि विषयों पर लग - भग चार सौ ग्रन्थों की रचना की। वेअनुकृति सिद्धान्त और विरेचन सिद्धान्त के प्रमुख प्रणेता हैं।

2. अनुकृति सिद्धान्त :-

अरस्तू ने साहित्य को अन्य कलाओं से महत्त्वपूर्ण माना है । संगीत में और नृत्य में लय प्रधान होता है। उसी प्रकार काव्य कला में अनुकृति प्रधान होती है। साहित्य में मानवीय क्रिया कलापों का अनुकरण करना ही अनुकृति या अनुकरण है।

अरस्तू के अनुसार काव्य की आत्मा अनुकृति है। यह अनुकृति चित्रकारी, नृत्य, संगीत आदि कलाओं में भी प्राप्त होती है। समाज में रहने वाले सज्जन और दुर्जनों का भी चित्रण होता है। काव्यों में अनुकृति होने के कारण समाज पर उसका प्रभाव होता है और समाज में आदर्श का प्रचार होता है।

(a) अनुकृति - विधि :- अरस्तू के प्रकार अनुकृति की तीन विधाएँ हैं।

(क) कवि अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। पात्र ही कुछ कहते हैं। यह एक प्रकार से प्रबन्ध शैली है। होमर के काव्य इस के उदाहरण हैं।

(ख) प्रारम्भ से लेकर कवि अंत तक सर्वत्र रहता है। इस में आत्माभिव्यंजना व्यकत होती है। कोई एक पात्र ही सारे काव्य में व्याप्त रहता है।

(ग) कवि नाटकीय शैली में अपनी भावनाओं को पात्रों के द्वारा व्यक्त करता है।

(b) काव्य में अनुकृति का महत्व :- अनुकृति मानव की प्रकृति है। अनुकरण करना उसका स्वभाव है। काव्य प्रेरणा भी अनुकरण है। काव्य के लक्षणों को आधार बनाकर काव्य को रसमय बनाने के लिए कवि अनेक प्रकार के काव्यंनुकरण (काव्यानुकृति) करता जाता है।

(c) अनुकृति सिद्धान्त की समीक्षा :- साहित्य के क्षेत्र में अनुकृति सिद्धान्त अरस्तू का आविष्कार नहीं था। इस के पहले ही इनके गुरु प्लेटो कर चुके थे। लेकिन अरस्तू ने अनुकृति सिद्धान्त का विचार और प्रयोग प्लेटो से अधिक सूक्ष्म अर्थ में किया था। इस के बाद **बूचर, गिल्बर्ट, पोट्स आदि दार्शनिकों** ने अपने - अपने विचार अनुकृति सिद्धान्त पर प्रस्तुत किये। स्कौट जेम्स ने **अनुकृति को कल्पनात्मक पुनः निर्माण का पर्यायवाची** माना था। कुछ विद्वानों ने अनुकृति (अनुकरण) का स्पष्टीकरण करने के प्रयास में अपने विचारों को अरस्तू पर थोपने का प्रयत्न किया।

डॉ. नगेन्द्र ने अपना अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा है - अनुकरण का अर्थ "पुनः सर्जन (Recreation) का पार्याय है।"

3. विरेचन सिद्धान्त :-

अरस्तू का कला संभन्धी दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है - "विरेचन सिद्धान्त। विरेचन का अर्थ है - शुद्धि करना। यह शब्द चिकित्सा शास्त्र से संबन्धित है जिस से शारीरिक विकारों की शुद्धि होती है या की जाती है। अरस्तू ने यह शब्द कला के संबन्ध में ले लिया। उनका कहना है कि कला के द्वारा और साहित्य के द्वारा मानव के दूषित मनोविकारों का विरेचन (शुद्धि) होता है।

उदा :- संगीत सुनने से मानसिक उल्लास होता है और मन हल्का होता है। इसी प्रकार धार्मिक रागों के प्रभाव से मानसिक विकार दूर हो जाते हैं। इस प्रकार के अनुभवों से मानसिक विकार दूर होकर आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अरस्तू काव्य तथा कलाओं का लक्ष्य मानसिक विकारों का या मनोविकारों का विरेचन मानते हैं।

(a) विविध विद्वानों के मत :- अरस्तू के परवर्ती विद्वानों ने विरेचन शब्द की व्याख्या तीन वर्गों में की थी।

(1) धर्म - परक अर्थ । इस के अनुसार विरेचन का अर्थ - बाह्य विकारों की उत्तेजना और उनके शमन के द्वारा आत्मा की शुद्धि और शान्ति करना है ।

(2) नीति - परक अर्थ । मनोविकारों की उत्तेजना द्वारा विविध मनोवृत्तियों का समन्वय होकर मानव में शान्ति का प्रसार होकर फलस्वरूप आनन्द की प्राप्ति होती है।

(3) कला - परक अर्थ। इस के संबन्ध में विविध मत तथा तर्क बताये गये हैं। विरेचन के दो पक्ष होते हैं -

1. अभावात्मक और 2. भावात्मक

मनोवेगों के उत्तेजन और तत्पश्चात उनके शमन से उत्पन्न मनः शान्ति अभावात्मक पक्ष है। कलात्मक विधान में आनन्द की प्राप्ति करना भावात्मक पक्ष है। बूचर, नगोन्द्र आदि आलोचकों ने अपने - अपने मतों का प्रचार किया। रिचर्ड्स के अनुसार अन्तर्वृत्तियों का सामंजस्य ही विरेचन सिद्धान्त का कलात्मक रूप है। कला अन्तर्वृत्तियों का जागरण करती है जिस से भावात्मक एकता साधारणीकरण के द्वारा रस की प्राप्ति होती है।

अरस्तू के द्वारा प्रतिपादित 'विरेचन सिद्धान्त अपूर्ण है। कला या साहित्य का काम केवल भावनाओं को शुद्ध करना ही नहीं और आगे बढ़ना है।

(b) अभिनवगुप्त का सामंजस्य :- अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त भारतीय आचार्य अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद के समकक्ष माना जा सकता है। अरस्तू ने विरेचन सिद्धान्त का अर्थ दूषित वासनाओं को शुद्ध करना बताया है। कला या साहित्य सभी वासनाओं को शुद्ध करना बताया है। कला या साहित्य सभी प्रकार की वासनाओं करो दूर कर आनन्द की प्राप्ति कराते हैं। अरस्तू का सिद्धान्त करुणा पर आधारित है जहाँ अभिनवगुप्त काअभिव्यक्तिवाद भावों पर आधारित है।

अरस्तू और अभिनवगुप्त के सिद्धान्तों में थोडा सा अन्तर होने पर भी एक दूसरे का सामंजस्य रखते हैं।

(c) काव्य रूपों का विवेचन :- अरस्तू ने काव्य के पाँच रूप माने हैं।

1. महाकाव्य
2. त्रासदी (Tragedy , दुःखान्त)
3. कामदी (Comedy, सुखान्त)

4. रौद्र स्तोत्र

5. गीति काव्य

अरस्तू ने महाकाव्य के लक्षण बताये हैं -

1. महाकाव्य, काव्य का एक भेद है।
2. इस में एक ही समय घटित होने वाली अनेक घटनाओं का समाहार होता है।
3. इस में पात्र उच्चकोटि के होते हैं।
4. इसका आकार विपुल (विस्तृत) होता है।
5. इस में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग होता है।
6. कथावस्तु, चरित्र, विचार - तत्त्व और पदावली महाकाव्य के मूल तत्त्व बताये गये हैं ।

महाकाव्य का कथानक इस प्रकार होना चाहिए -

1. प्रख्यात हो।
2. उसका क्षेत्र विस्तृत हो।
3. किसी विशेष घटना से सुसंबद्ध हो।
4. कथाक्रम संभाव्यता तथा कुतूहलता।

महाकाव्य के पात्रों के बारे में अरस्तू के विचार हैं - पात्र यशस्वी, कुलीन, धीरोदात्त आदर्श और इसी प्रकार शैली में गति और मनोहरता होनी चाहिए। प्रसाद गुण संपन्न हो। प्रसिद्ध समालोचक नगोन्द्र ने अरस्तू की प्रशंसा की । वैसे तो भारतीय विद्वान महाकाव्य के आठ लक्षण बताते है।

नाटकों के दो विधान बताये गए हैं।

1. त्रासदी (दुःखान्त)
2. कामदी

दोनों में कथा तत्त्व प्रधान है, और अभिनय दोनों का रूप है। अभिनय नाटक का प्राण कह सकते हैं।

त्रासादी में - 1. कथानक

2. चरित्र
3. विचार तत्त्व

4. पदावली
5. दृश्यविधान
6. गीति विधान होना चाहिए। मानव हृदय को स्पन्दिन करने की शक्ति त्रासदी में होती है।

कामदी सुखान्त नाटक है की इस में हास्य का संचार अधिक होता है, अन्य लक्षण त्रासदी जैसा ही है ।

उपसंहार :-

अरस्तू ने प्रधानतया -

1. अनुकृति सिद्धान्त
2. विरेचन सिद्धान्त पर चर्चा की है।

अनुकृति सिद्धान्त में कला की मूलभूत प्रकृति का परिचय प्राप्त होता है। विरेचन सिद्धान्त में पाठक की आनन्दानुभूति प्रकट होती है। अनुकृति सिद्धान्त में कला के अनुकरण पर चर्चा होती है। विरेचन सिद्धान्त में कला में होने वाले विकारों की शुद्धि होती है। अरस्तू के ये दोनों सिद्धान्त परवर्ती (next) विद्वानों के लिए मार्गदर्शन बन गये हैं। उनका विरेचन सिद्धान्त अभिनव गुप्त के अभिव्यक्तिवाद के समकक्ष माना जाता है।

अरस्तू का समय आज से 2400 सालों के पहले का है। साहित्य, दर्शन, संस्कृति, समाज आदि की वह प्रारंभ दशा थी। ऐसे समय में अरस्तू ने अपने सिद्धान्तों के द्वारा काव्य, कला और दर्शन का मार्ग (प्रकाशित) आलोकित किया।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

प्र. 1. अरस्तू से प्रतिपादित अनुकृति सिद्धान्त क्या है ? समीक्षा कीजिए।

2. अरस्तू के विरेचन सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।

पाठ - 3

लोंजाइनस का औदात्य सिद्धान्त

प्र. लोंजाइनस के औदात्य सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. औदात्य का मूलाधार
3. औदात्य के स्त्रोत
   (a) उदात्त विचार
   (b) भावों की उदात्तता
   (c) अलंकार योजना
   (d) आकृष्ट भाषा
   (e) रचना विधान में गरिमा
4. औदात्य में दोष
5. उपलब्धियाँ
6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

यूनानी साहित्य चिन्तकों में और दार्शनिकों में लोंजाइनस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे साहित्य में औदात्य पर चर्चा करते हैं। औदात्य के बारे में वे चार - पाँच विषय बताते हैं।

1. औदात्य अभिव्यक्ति की उच्चता है। यह शैली का विशेष गुण है।
2. औदात्य तर्क का समाधान नहीं देता। वह भावना प्रधान लक्षण है।
3. औदात्य प्रभावशाली गुण है। पाठक को वह अनायास आकृष्ट करता है और अनायास वहा ले जाता है।

4. औदात्य अवसर के अनुकूल रचना में एकाएक चमत्कार की भाँति स्पुरित होता है।
5. एक बात में कलाकार या साहित्यकार के हृदय को पहचानना और उसकी सही अभिव्यक्ति करना औदात्य का लक्षण है।

यहाँ औदात्य कभी भावावेश और कभी चमत्कार के रूप में बताया गया है। भावना व्यापक वस्तु है। जहाँ चमत्कार शैली का गुण है और उदात्त शैली दोनें से चमत्कार या आनन्द की प्राप्ति होती है।

2. औदात्य का मूलाधार :-

औदात्य का मूल आधार नियमों का ज्ञान और अभ्यास माना ज है। प्रतिभा के साथ बुद्धि का नियंत्रण और शिक्षा औदात्य केलिए आवश्यक है।अलंकारों का या शब्दाडंबर का औदात्य स्वीकृति है। लेकिन खाली अलंकार या शब्द चयन मात्र कविता नहीं है। चरित्र विहीन प्रतिभा शाली का संसार में कुछ मूल्य नहीं । उसी प्रकार महान विद्वान भी स्वार्थी, अहंवादी एवं दंभी (cheat) होने पर उसकी भावना औदात्य नहीं बनती और उसकी रचना औदात्य नहीं निकलती। अतः उदात्त साहित्य की सृष्टि उदात्त व्यक्ति ही कर सकता है। जिनका जीवन तुच्छ तथा व्यकित्वहीन होता है। उसकी कलम से स्थायी महत्व रहने वाली उदात्त रचना नहीं निकल सकती। औदात्य हृदय तथा मस्तिष्क से निकलकर शब्दों में झंकृत होता है।

3. औदात्य के स्रोत :-

औदात्य के पाँच स्रोत बताये गये हैं। वे इस प्रकार हैं।

(a) उदात्त विचार :- औदात्य में उदात्त विचारों का सर्वोच्च स्थान है। इस केलिए शिक्षा - दीक्षा और संस्कारों की आवश्यकता है। उदात्त विचार महान व्यक्तियों की वाणी से निकलती है। लेखक या कवि का जीवन और उनके विचार उदात्त होने से उदात्त साहित्य का सृजन होता है।

उदाहरण :- होमर कवि का व्यक्तित्व और कृतित्व औदात्य से परिपूर्ण है।

(b) भावों की उदात्तता :- साहित्य भाव प्रधान होता है। कभी भावावेश में औदात्य को न भूले। भावों का चित्रण और बिंब - विधान उदात्त पूर्ण होना चाहिए।

(c) अलंकार योजना :- लोंजाइनस के अनुसार अलंकारों का औदात्यपूर्ण नियोजन होना चाहिए। उन्होंने कुछ अलंकारों के नाम भी दिये हैं - उपमा, रूपक, संचयन, पुनरावृत्ति, विपर्यय, व्यतिक्रम आदि।

(d) उत्कृष्ट भाषा :- औदात्य का एक स्रोत उत्कृष्ट भाषा है। भाषा के द्वारा ही भावों की अभिव्यक्ति होती है। शब्दों में सौन्दर्य, गरिमा, भव्यता आदि हो। सुन्दर शब्दों में प्रकाश होता है। भाषा समाज को आकर्षित करती है। लोंजाइनस कहते हैं - भाषा में प्रवाह हो, अलंकारों का समावेश हो और विभिन्न विशेषताओं से परिपूर्ण हो।

(e) रचना विधान में गरिमा :- गरिमा का अर्थ है - प्रसन्नता तथा सामंजस्य . विषय का प्रतिपादन सामंजस्यपूर्ण हो। सामंजस्य से भाव, अलंकार, विचार आदि औदात्य के मार्ग पर चलेंगे।

4. औदात्य में दोष :-

साहित्य प्रकृति जन्य होता है। ऋतु के अनुसार फूल खिलते हैं और फल होते हैं। हम उदारता प्रकट करते हुए खाद और पानी दें, कुछ लाभ नहीं । साहित्य का औदात्य लक्षण भी वही है। समाज के अनुसार विषय होता है और विषय के अनुरूप विचार, भाव अलंकार, भाषा आदि होते हैं । औदात्य के नाम पर हर विषय को घसीटना कलि की पंखुडियों को तोड देता ही है।

5. उपलब्धियाँ :-

अनुकृति सिद्धान्त के अनुसार कला प्रकृति की अनुकृति है। अरस्तू ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। प्रश्न उठता है कि - अगर कला प्रकृति की अनुकृति है तो उस में कलाकार का योगदान कथा है ? अरस्तू के अनुसार कलाकार की विशेषता कुछ नहीं है। वे वस्तुवादी या यथार्थवादी हैं , तो लोंजाइनस अपने औदात्य के द्वारा स्वच्छन्दतावादी बन गये।

औदात्य की भावना सर्व प्रथम साहित्य क्षेत्र में लोंजाइनस द्वारा ही हुई। अरस्तू के अनुकृति सिद्धान्त की अपेक्षा साहित्य के क्षेत्र में औदात्य को अधिक महत्त्व दिया गया है।

औदात्य के द्वारा कवि के उच्च विचार, भावना, अलंकारयुक्त शैली, शब्द चयन, रचना के गुण - दोष आदि तत्त्वों का समाहार पाठक के सामने आ जाता है। इस में साहित्यकार की मौलिक प्रतिभा व्यक्त होती है। उस में विचार तत्त्व, भाव तत्त्व और भाषा का सामंजस्य होकर पुष्टि या रसाभिव्यक्ति होती है।

6. उपसंहार :-

औदात्य का मूल अर्थ है - उदारता। उस में आत्म बलिदान, त्याग आदि पर कवि की भावना चलती है। औदात्य में भावना प्रधान होती है, विचार नहीं। विचार भावना की पुष्टि में आते हैं।

औदात्य में शान्त रस प्रधान होता है । अलंकार काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने केलिए आते हैं। माधुर्य और आनन्द आदि गुणों से औदात्य समन्वित होता है। रीति कालीन काव्य अलंकार युक्त होने पर भी उन काव्यों में औदात्य के लक्षण दिखाई नहीं देते क्यों कि उन काव्यों में विद्वत्ता तथा अलंकार योजना ही प्रधान लक्षण थे। औदात्य में भाव, भाषा संस्कार आदि समन्वय होकर शान्त रस में परिवर्तित होते हैं। इस में कवि या साहित्यकार का हृदय - सौन्दर्य प्रतिफलित होता है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 4

क्रोचे का अभिव्यंजनावाद

प्र. क्रोचे का अभिव्यंजनावाद क्या है, स्पष्ट कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. सहजानुभूति
3. कला में विषय और शैली की अभिन्नता
4. कला की अखण्डता
5. कला के साधन
6. सामाजिक क्षमताएं
7. सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में अन्तर
8. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

अभिव्यंजनावाद के प्रवर्तक क्रोचे हैं। इतिहास, सौन्दर्य शास्त्र, माकर्सवादी अर्थ - व्यवस्था, आत्म - दर्शन आदि पर आपने नवीन दृष्टिकोण से विचार किया। आप मौन्दर्य शास्त्र के विद्वान है, विचारक है तथा दार्शनिक है। आप के विचार दार्शनिक हीगल से प्रभावित हैं। लेकिन आपने हीगल का अंधानुकरण नहीं किया।

क्रोचे के अनुसार आत्मा की दो प्रधान प्रवृत्तियाँ हैं।

1. ज्ञानात्मक और
2. व्यावहारिक

ज्ञानात्मक के पुनः दो भेद माने गये हैं।

अ. सहजानुभूति और

आ. विचारात्मक क्रिया

व्यावहारिक प्रवृत्ति के भी दो भेद माने गये हैं।

इ. आर्थिक प्रवृत्ति और

ई. नैतिक प्रवृत्ति

2. सहजानुभूति :-

सहजानुभूति के बारे में क्रोचे ने नेति - नेति कहा। भौतिक ज्ञान प्रत्यक्षीकरण, संवेदना आदि से सहजानुभूति भिन्न बताई गयी है। यह ऐन्द्रिक संवेदना से भी भिन्न है। आखिर कोचे ने निश्चयात्मक रूप से बताया कि - सहजानुभूति ही अभिव्यंजना है। लेकिन ये दोनों प्रवृत्तियाँ अलग - अलग हैं। इस उक्ति में विरोधाभास प्रतीत हो रहा है। अनुभूति का बाह्य रूप या वयावहारिक रुप अभिव्यंजना है। क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति, अनुभूति की अन्तिम दशा है।

पुनर्विचार :- क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति, अभिव्यंजना और कला तीनों समान हैं। यह एक तर्क है। ये तीन अलग - अलग प्रवृत्तियाँ हैं जो एक दूसरे से संबन्ध रखती हैं।

उदाहरण :- हम यहाँ एक तर्क खडा कर सकते हैं - गाय और भैंस दूध देने वाले जानवर हैं। इसलिए दोनों समान हैं। भैंस और कौआ काले होते हैं। इसलिए दोनों समान होते हैं। इस प्रकार क्रोचे का तर्क गाय, भैंस और कौए को समान बनाया।

यह तर्क ठीक प्रतीत नहीं होता।

3. कला में विषय और शैली की अभिन्नता :-

क्रोचे के अनुसार विषय और शैली अभिन्न है। दोनों में कोई अन्तर नहीं। विषय को कुछ सजाकर बताना ही शैली है।

उदाहरण :- फिल्टर में पानी को छानने पर पुनः वही पानी आ जाता है, साफ सुधरा हुआ। पहले का पानी विषय है। दूसरे का पानी शैली है।

पुनर्विचार :- विषय और शैली कदापि अभिन्न नहीं हो सकते। ये दोनों भिन्न ही हैं । शैली विषय को व्यक्त करने का विधान है।

उदाहरण :-

राम की कथा विषय वस्तु है। रामचरितमानस, विनय - पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली आदि काव्य राम को आधार बनाकर विविध शैलियों में रचे गये हैं। कभी - कभी ऐसा भी होता है कि उपन्यास, नाटक, गीत आदि एक ही विषय को आधार बनाकर लिखे जाते हैं।

4. कला की अखण्डता :-

क्रोचे के अनुसार कला का एक रूप होता है। कला को खणडों में करना अनुचित है। कविता को दृश्यों में, उपाख्यानों में और उपमाओं में वर्गीकरण करना कला का खण्डन करना है। यह ऐसा है कि जीव को हृदय, मस्तिष्क, माँस पेसियों आदि में बाँट देना, शव में बदलना है।

पुनर्विचार :- क्रोचे ने साहित्य को अखण्ड बताया है। लेकिन कभी भी किसी वस्तु के तत्त्व को समझने केलिए उसी प्रत्येक वस्तु की जाँच करनी पडती है। कला एक संपूर्ण वस्तु है। किन्तु कला का एक - एक भाग वस्तु में देखना पडता है। एक नेत्र की परीक्षा कराने केलिए पूरे आदमी को डॉकटर के पास जाना पडता है। डॉकट्र एक नेत्र की परीक्षा मात्र करता है। कला का विषय भी ऐसा है।

5. कला के साधन :-

क्रोचे के अनुसार कलाकार केलिए चार साधनों की आवश्यकता है।

1. इच्छा शक्ति
2. ज्ञान शक्ति
3. चिन्तन
4. कल्पनाशक्ति

6. सामाजिक क्षमताएँ :-

क्रोचे के अनुसार कला का आस्वादन समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रंखता है । कला - सृजन और कला - आस्वादन दोनों में कोई अन्तर नहीं।

पुनर्विचार :- भोजन बनाना और भोजन खाना दोनों कदापि एक नहीं हो सकते। क्रोचे का उपर्युक्त कथन या सिद्धान्त विचित्र लगता है।

7. सामान्य अनुभूति और कलाजन्य अनुभूति में अन्तर :-

अनुभूति के मुख्यतः दो आधार हैं ।

1. सुख और
2. दुःख

ये दोनों सहजानुभूति से संबन्धित है। क्रोचे कहते हैं - सामान्य अनुभूति का क्षेत्र कला से पृथक (भिन्न) होता है। नाटक को देखकर हमें सुख - दुःख का अनुभव होता है और कभी आँसू भी बहाते हैं। यह अनुभूति कलाजन्य है जो सामान्य अनुभूति से भिन्न है। कला जन्य अनुभूति लौकिक अनुभूति से हल्की होती है।

पुनर्विचार :- क्रोचे के अनुसार कलाजन्य अनुभूति लैकिक अनुभूति से हल्की होती है।

8. उपसंहार :-

क्रोचे के अभिव्यंजनावाद पर किसी विद्वान का कथन है - 'उनके विचार हमें कहीं प्राप्त नहीं होते, केवल उनके मन के हैं। एक प्रकार से उनका अभिव्यंजनावाद अनुभूतिवाद है। उन्होंने काव्य में कल्पना और अभिव्यक्ति दोनों को समान महत्त्व दिया है जो अभिव्यंजनावाद ही है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 5

आई. ए. रिचर्ड्स के काव्य सिद्धान्त

प्र. आई. ए. रिचर्ड्स के काव्य सिद्धान्त का अनुशीलन कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. मनोविज्ञान
3. प्रेषनीयता का सिद्धान्त
4. काव्य की भाषा
5. काव्यास्वादन की प्रक्रिया
6. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

आधुनिक पाश्चात्य समीक्षकों में रिचर्ड्स का स्थान अत्यन्त महान है। समीक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अनेक नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने मनोविज्ञान, अर्थ विज्ञान और प्रेषनीयता पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

2. मनोविज्ञान :-

रिचर्ड्स ने मनोविज्ञान के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन किया। मनोविज्ञान अधिकांश नैतिक दृष्टि पर आधारित है। सामाजिक हित नैतिक मूल्यों में निहित है। इसी के आधार पर हम व्यक्तियों को अच्छे या बुरे कहते हैं। सामाजिक मूल्यों में

1. प्रवृत्ति और 2. निवृत्ति होते हैं।

प्रवृत्ति में भौतिक प्रधानता और कभी - कभी अहंकार भी हो सकता है। निवृत्ति में प्रेम भावना, सहृदयता आदि सत्गुण विशेष होते हैं।

उदाहरण :-

हम किसी की सहायता करते समय दर्प, अभिमान या गर्व प्रकट करना प्रवृत्ति है। ऐसा न होकर, भगवान के नाम पर या आत्मीतया और अपने धर्म के नाम पर किसी की सहायता करना निवृत्ति है। यही मानवता कह सकते हैं।

(क) प्रेरणा :- प्रवृत्ति या निवृत्ति में प्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। चाहे प्रवृत्ति हों या निवृत्ति हो उस में (उन में) सामाजिक हित निहित है। कभी ये प्रेरणा व्यक्ति , समाज आदि से प्राप्त होती है। कर्म के फल के आधार पर अच्छे या बुरे का निर्णय होता है। अच्छा फल निकलने पर नैतिक मूल्य बढ़ते हैं।

(ख) सामाजिक मूल्य और साहित्य :- समाज में धर्म के नियम अंधविश्वास, राजनीति आदि लक्षण होते हैं। हर विषय में हम नैतिक मूल्यों को देख नहीं सकते। सामाजिक प्रथाएँ बदलती जाती है। परिस्थितियाँ भी बदलती जाती हैं। उनके अनुसार समाज के नैतिक मूल्य उतनी जल्दी नहीं बदलते। नैतिक आदर्श मूलतः सामाजिक नियमों पर अधिक आधारित रहते हैं। इसलिए नैतिक आदर्श जल्दी नहीं बदलते।

कलाकार सामाजिक प्राणी है। सामाजिक चेतना को आधार बनाकर वह अपना कला का सृजन करता है। कवि अपनी निजी अनुभूतियों को आधार बनाकर काव्य का निर्माण करता है।

3. प्रेषनीयता का सिद्धान्त :-

रिचर्ड्स का काव्य संबन्ध दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है - प्रेषनीयता । प्रेषनीयता (Communication) मन की एक सामान्य क्रिया है। कवि की भावना अनुभूति परक होती है। कवि अपनी अनुभूतियों को किसी बिंबयोजना में अभिव्यक्त करता है। कवि की भावना या अनुभूति या संवेदना पाठक के हृदय तक पहुँचकर कवि की अनुभूति को पाठक स्वयं प्राप्त करना प्रेषनीयता है। प्रेषनीयता केलिए पाठक में विषय का व्यापक परिचय, विस्तृत प्रवेश, सहृदयता और अनुभूति की तीव्रता होनें चाहिए। ये सब मिलकर पाठक के संस्कार माने जाते हैं।

कवि या कलाकार अपनी सृष्टि करता जाता है। प्रेषनीयता केलिए कवि को किसी भी प्रकार का प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं। कलाकृति उत्तम रचना होने पर उस में आकर्षण होगा और सहृदयों में प्रेषनीयता स्वयं उत्पन्न होगी। प्रेषनीयता के बारे में सोचने पर कवि अपने काव्य जगत पर अधिक स्थिर नहीं रह सकता। कलाकार प्रेषनीयता के बारे में सोचेगा तो उसकी भावना में तृटि आयेगी।

4. काव्य की भाषा :-

प्रेषनीयता का माध्यम भाषा है। रिचर्ड्स ने प्रेषनीयता केलिए चार विधान बताए हैं।

1. **वाच्यार्थ :-** वाच्यार्थ सीधा भाव को बता देता है। इस में कोई हेर - फेर नहीं रहता।
2. **भाव :-** काव्य में भाव की महत्ता अधिक होती है। वाच्यार्थ गौण बन जाता है।
3. **वक्ता की वाणीगत चेष्टा :-** प्रेषनीयता में वक्ता की वाणी का भी महत्त्व होता है। मधुर वाणी में आकर्षण होता है। जिस से प्रेषनीयता सुलभ होती है।
4. **अभिप्राय :-** काव्य में उद्देश्य या अभिप्राय का महत्वपूर्ण अंश होता है, जिस पर पूरा काव्य निर्मित होता है।

रिचर्ड्स प्रेषनीयता व्यावहारिक विधान में प्रस्तुत करते हैं। अर्थ भाव का बोधक होता है। भाव से पाठक को अनुभूति का सूचक होता है। अर्थ और भाव परस्पर संबन्धित है।

5. काव्यास्वादन की प्रक्रिया :-

काव्यास्वादन या काव्य प्रेषन की प्रक्रिया 6 अवस्थाओं में होती है।

1. मुद्रित शब्दों से (पुस्तकों से) नेत्रों का ग्रहण करना। पाठक पुस्तकें पढ़कर या ग्रन्थ पठन से काव्यानुभूति प्राप्त करता है।
2. नेत्रों द्वारा हमें या पाठक को संवेदना प्राप्त होती है। उस संवेदना का बिंबग्रहण करें।
3. स्वतंत्र बिंबों का ग्रहण - काव्य को हजारों और लाखों पाठक पढ़ लेते हैं। हर पाठक अपनी - अपनी अनुभूति के अनुसार बिंबयोजना ग्रहण करता है। पाठकों की अनुभूति तथा भावना के अनुसार बिंबग्रहण होता है।
4. पाठक अपने - अपने अनुभवों के अनुसार काव्यास्वादन करते हैं।
5. भाषा की अनुभूति का काव्यास्वादन में महत्वपूर्ण स्थान है।
6. दृष्टिकोण में सामंजस्य - कवि के दृष्टिकोण से पाठक को सांमजस्य रखना चाहिए। काव्यानुभूति में भावोद्दीप्ति का प्रधान अंग है।

6. उपसंहार :-

इस प्रकार रिचर्ड्स के सिद्धान्त भाषा की दृष्टि से मौलिक, विचारों की दृष्टि से गंभीर और क्षेत्र की दृष्टि से व्यापक हैं । उनके सिद्धान्तों में भाषा विज्ञान, मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र के आधारभूत तन्त्वों का समावेश हुआ है। आधुनिक युग साहित्य चिन्तकों में रिचर्ड्स का स्थान बहुत ऊँचा है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 6

टी. एस. इलियट के काव्य - सिद्धान्त

प्र. टी. एस. इलियट के काव्य - सिद्धान्तों पर अपना निचार प्रकट करें।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. कला सम्बन्धी विचार
3. आलोचना सम्बन्धी दृष्टिकोण
4. परम्परा और व्यक्तित्व
5. निर्वैयक्तिकता - सिद्धान्त
6. क्लासिक या परिनिष्ठित की अवधारणा
7. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

टी. एस. इलयट बीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं समीक्षक हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा, विद्वत्ता एवं चिन्तन क्षमता के बल पर अंग्रेजी समीक्षा को एक नयी दृष्टि और नयी दिशा दी। संस्कृत एवं पाली भाषाओं का भी उन्होंने विशेष अध्ययन किया। सन 1948 में उन्हें साहित्य - सेवा के उपलक्ष्य में विश्व का सुप्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में मुख्यतः निबन्ध, व्याख्यान एवं पुस्तक - समीक्षाएँ प्रस्तुत की जिनकी संख्या 500 बतायी जाती है।

नवीन दृष्टिकोण तथा मौलिक विचारों से उनकी समीक्षा पद्धति परिपुष्ट थी।

2. कला सम्बन्धी विचार :-

कला के सम्बन्ध में इलियट का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वतन्त्र था। वे कला का मूल्यांकन शुद्ध कलात्मक मूल्यों के आधार पर करने के पक्षपाती थे ; धार्मिक, नैतिक या राजनीतिक तत्त्वों के आधार पर उनका मूल्यांकन करना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। वे कला को धर्म, अध्यात्म, दर्शन, नीति या राजनीति की स्थानापन्न बनाना या उनके तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना उचित नहीं समझते थे।

इलियट के अनुसार कला हमारी मानसिकता का विकास करती है और कला को पुनर्जीवित करती है। वह अपने आत्मतत्त्व का गहराई से बोध कराती है और साथ ही हमें रूढ़िगत विधि - विधानों से मुक्त होने में सहायता प्रदान करती है।

कला के प्रति इलियट का अत्यन्त सन्तुलित एवं सुविचारित दृष्टि है। कला को वे स्थूल रूप में न देख कर, मानव - भावनाओं, वृत्तियों एवं प्रवृत्तियों के संशोधन एवं विकास की सूक्ष्म प्रक्रिया के रूप में देखते हैं।

3. आलोचना सम्बन्धी दृष्टिकोण :-

टी. एस. इलियट ने आलोचना सम्बन्धी तीन मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं - (1) काव्य में आत्माभिव्यक्ति का विरोध (2) इतिहास एवं परम्परा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान देना और व्यक्ति की प्रतिभा को गौण स्थान देना और (3) साहित्यिक कृति का मूल्यांकन तटस्थ या वस्तुपरक दृष्टि से विचार करना।

इलियट के आगमन से पूर्व अंग्रेजी समीक्षा में वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं शैली निजी प्रयोगों पर अधिक बल दिया जाता था। स्वच्छन्दतावादी कवि परम्परा को रूढ़ि मान कर अपनी वैयक्तिकता को सर्वोपरि पोषित करते थें। ये सारी चेष्टाएँ एकांगी एवं अतिवादी भ्रान्त धारणाओं एवं भ्रामक उक्तियों का खण्डन अत्यन्त सबल तर्कों से किया। फलतः इलियट ने आलोचना के श्रेत्र को स्वस्थ, संतुलित एवं सही दिशा प्रदान की।

4. परम्परा और व्यक्तित्व :-

इलियट के अनुसार कविता अनुभूति की अभिव्यक्ति की भावना अनुचित है। परम्परा का अर्थ रूढ़ि नहीं या अन्धानुकरण नहीं, बल्कि पूर्ववर्ती इतिहास का बोध है। किसी भी जाति और युग की सांस्कृतिक चेतना में दो प्रकार के तत्त्व होते हैं - (1) देश और काल से सम्बद्ध और (2) शाश्वत और सनातन। इन में प्रथम तत्त्व तात्कालिक तथा क्षणिक हाते हैं अतः वे अपने युग के साथ लुप्त हो जाते हैं। दूसरे तत्त्व व्यापक और स्थाई होते हैं। वस्तुतः वर्तमान अतीत से कटा हुआ कोई अलग टुकडा नहीं है। सारी संस्कृति अतीत के ही किसी महान वृक्ष की परम्पराओं पर जीवित है।

परम्परा का सम्बन्ध प्रत्येक जाति की संस्कृति, धर्म, दर्शन तथा जीवन - दृष्टि से है। यह परम्परा सतत् विकासोन्मुख रहती है। सफल कवि या कलाकार बनने के लिए परम्परा का बोध आवश्यक है। इसके लिए पूर्ववर्ती महान कलाकारों एवं साहित्यकारों की कृतियों का गहन अध्ययन करना पडता है। साथ ही उसे अपने युग की संस्कृतिक पृष्ठभूमि से भी आवगत होना पडता है।

कवि जन्म से होता है, बनाया नहीं जाता। कवि की प्रतिभा जन्मजात होती है। व्यक्तित्व काव्य का साध्य नहीं। वह एक साधन या माध्यम मात्र है। काव्य व्यक्तित्व के माध्यम से अभिव्यंजना है काव्य में व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं, अपितु 'परम्परा' की ही अभिव्यंजना नये रूप में होती है।

इलियट के अनुसार कविता के द्वारा कवि अपने व्यक्तित्व की स्थापना नहीं, अपितु विलयन अथवा उससे पलायन करता है। उनके सिद्धान्तों का पूर्णतया हृदयंगम करने के लिए निर्वैयक्तिकता सम्बन्धी विचारों का अध्ययन आवश्यक है।

5. निर्वैयक्तिकता - सिद्धान्त :-

कवि के भाव, विचार, अनुभाव, अनुभूतियाँ, बिंब एवं प्रतीक आदि अपने मूल रूप में व्यक्त न हो कर एक नये रूप में व्यक्त होते हैं। जिस प्रकार एक स्वादिष्ट चटनी में नमक, मिर्च, खटाई, पुदीना आदि पदार्थ मिश्रित रहते हैं, उस चटनी में सारे पदार्थों का समन्वय स्वाद प्राप्त होता है। इसी प्रकार कविता में भी भाव, विचार, अनुभूति, अनुभाव, बिम्ब, प्रतीक आदि कवि के वैयक्तिक होते हैं। किन्तु कविता के रूप में हो जाने पर वे कवि से सम्बन्धित न रह कर सार्वजनीन हो जाते हैं। कवि का स्वर वैयक्तिक न रह कर विश्वमानव का सार्वजनीन स्वर बन जाता है।

रस - सिद्धान्त के अन्तर्गत जो बात साधारणीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत कही गयी है वही बात इलियट ने निर्वैथक्तिकता के सिद्धान्त के अन्तर्गत कही है। वस्तुतः रस - सिद्धान्त के अनुसार सामान्य जीवन के स्थायी भाव काव्य के माध्यम से व्यक्त होकर साधारणी करण की प्रक्रिया के द्वारा रसानुभूति या आनन्दानुभूति में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार इलियट ने वस्तुपरक सामंजस्य (objective correlative) स्पष्टीकरण किया।

6. क्लासिक या परिनिष्ठित की अवधारणा :-

क्लासिक का अर्थ है - प्रौढ़ता (परिनिष्ठित)। क्लासिक रचना का अर्थ है - 'प्रौढ़ या परिनिष्ठित रचना, कोई भी कृति प्रौढ़ होने पर ही विकसित या व्यक्त होती है।

काव्य कृति में प्रौढ़ता कृतिकार के मस्तिष्क की प्रौढ़ता से आती है अल्प - विकसित समाज में न तो प्रौढ़ मस्तिष्क का विकास हो सकता है और नहीं उस स्थिति में किसी क्लासिक रचना का सृजन सम्भव है। इलियट ने (1) भाषा की प्रौढ़ता, (2) कृति का सार्वभौमप्रभाव और (3) जातीय या राष्ट्रीय चरित्र की अभिव्यक्ति की आवश्यकता मानते हैं। युग और समाज के प्रौढ़तम मस्तिष्कक की कृति क्लासिक काव्य बन सकती है। उदाहरण के लिए वाल्मीकि, कालिदास, शेक्सपियर, तुलसीदास, टालस्टाय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रेमचन्द की कृतियाँ क्लासिक रचनाओं में परिगणित की जा सकती है।

7. उपसंहार :-

किसी भी रचना की निष्पक्ष एवं तटस्थ समीक्षा राग - द्वेष रहित - निष्पक्ष समीक्षक ही कर सकता है, स्वयं कवि नहीं । निष्पक्षता एवं तटस्थता के अतिरिक्त समीक्षक में पर्याप्त संवेदनशीलता था अनुभूति की क्षमता होनी चाहिए ; सहृदयता अन्तर्दृष्टि, विवेक एवं बोध का होना भी आवश्यक है। समीक्षक का अध्ययन व्यापक और विवेकपूर्ण होना चाहिए।

इलियट के विचार से समीक्षक का कार्य बहुत ही उत्तर दायित्वपूर्ण है। अतः इसके लिए उसका व्यक्तित्व भी सुविकसित होना चाहिए। समीक्षक को दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और अपने युग की संस्कृति समीक्षक का उच्च आदर्श अंग्रेजी के लिए ही नही ; बल्कि सारे विश्वसाहित्य के लिए आवश्यक है।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

पाठ - 7

मार्क्सवाद

प्र. मार्क्सवाद के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

रूपरेखा :-

1. प्रस्तावना
2. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
3. मूल्य - वृद्धि का सिद्धान्त
4. साम्यवाद की ओर
5. मार्क्सवाद - साहित्य की परिणति
6. भारतीय साहित्य में मार्क्सवाद
7. हिन्दी के क्षेत्र में मार्क्सवाद
8. उपसंहार

1. प्रस्तावना :-

मार्क्सवाद का उद्‌गम अंग्रेजी शब्द 'माक्सिजम' मे हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह क्रियात्मक दर्शन है। इस दर्शन का लक्ष्य परिवर्तन है और वह मूलतः क्रियात्मक है। इस प्रकार मार्क्सवाद के दो स्वरूप हैं -

(1) सृष्टि और समाज का विश्लेषणात्मक अध्ययन और

(2) संचित अध्ययन के आधार पर समाजिक परिवर्तन का प्रयास।

अतः मार्क्सवाद सृष्टि और समाज का समन्वित रूप है।

2. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद :-

मार्क्सवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं। इस के अनुसार सृष्टि का मूल सत्य पदार्थ है। पदार्थ सदा परिणामशील होने के कारण द्वन्द्वात्मक कहलाता है। पदार्थ के सारे परिवर्तन शुद्ध भौतिकवाद के अन्तर्गत आते हैं।

भौतिक जगत स्वयं विकास का कारण माना जाता है। मार्क्सवाद आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, मृत्यु के बाद जीवन आदि स्वीकार नहीं करता।

भौतिक विकासवाद को परिचालित करनेवाली प्रवृत्ति का नाम द्वन्द्वात्मक है। संघर्ष से ही विकास होना द्वन्द्वात्मक कहलाता है । संघर्ष के क्रम से भौतिक जगत में नयी वस्तुओं, नये - नये रूपों, नई - नई शक्तियों और सत्ताओं का विकास होता रहता है। अतः दो शक्तियों के पारस्परिक द्वन्द्व से भौतिक जगत का विकास होना 'द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद' कहलाता है।

3. मूल्य - वृद्धि का सिद्धान्त :-

मार्कस के अनुसार उत्पत्ति के चार अंग है - (1) मूल पदार्थ (2) स्थूल साधन (3) श्रमिक का श्रम और (4) मूल्य वृद्धि। उदाहरण के लिए पाँच रुपये की कपास को कात - बुनकर कपडे के थान में परिवर्तित किया जाता है तो उसी थान का मूल्य पच्चीस रुपये से अधिक हो जाता है। फलतः वहाँ बीस रुपये की मूल्य वृद्धि हुई। यह सारा लाभ श्रमिक के श्रम पर आधारित है। अतः वह मूल्य वृद्धि श्रमिक को ही मिलना चाहिए। किन्तु पूँजीवादी युग में मिल - मालिक ही इसका आधिकांश लाभ हडप लेता है। फलतः समाज में दो वर्गों का विकास हुआ -

(1) श्रमिक वर्ग (शोषित वर्ग) और

(2) श्रमिकों के श्रम का अनुचित लाभ उठानेवाला वर्ग (शोषक वर्ग)

4. साम्यवाद की ओर :-

मार्कस के अनुसार विश्व में दो ही जातियाँ या वर्ग हैं -

(1) शोषक वर्ग और शोषित वर्ग । दास प्रथा के युग में, सामन्ती प्रथा के युग में और पूँजीवादी युग में मजदूर का शोषण होता ही रहा। पूँजीवादी युग में श्रमिक अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे अपने श्रम को बेच सकता है। किन्तु उसे उत्पादन का पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो रहा। श्रमिक को उत्पादन का पूरा लाभ तभी मिल सकता है, जबकि उत्पादन के साधनों पर उसका अधिकार हो। अस्तु, साम्यवादी व्यवस्था स्थापित करना कार्ल मार्क्स का लक्ष्य था, जिसमें मजदूरों की प्रतिनिधि सरकार द्वारा उत्पादन के समस्त साधनों पर नियन्त्रण हो और प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम के अनुरूप फल मिले।

5. मार्क्सवाद - साहित्य की परिणति :-

मार्क्सवादी दर्शन विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्रचार हुआ। यह दर्शन राजनीति में आकर साम्यवाद कहलाया और साहित्य में प्रगतिवाद नाम से व्यवहृत हुआ। प्रमुख प्रवृत्तियाँ -

(क) धर्म, ईश्वर और परलोक का विरोधः समाज में वर्ग - चेतना उत्पन्न करे तथा शोषित वर्ग को संघर्ष के लिए तैयार करने के लिए सर्व प्रथम ईश्वर, धर्म, परलोक एवं भाग्य सम्बन्धी विचारों का उन्मूलन करना आवश्यक है। जब तक एक श्रामिक ईश्वरबादी, धर्मपरायण परलोक पर विश्वास करनेवाला तथा भाग्यवादी होगा, वह हिंसात्मक क्रान्ति के लिए तैयार नहीं होगा।

(ख) पूँजीपति वर्ग के प्रति घृणा : मार्कसवादी दर्शन पूँजीपति वर्ग के प्रति घृणा उत्पन्न करता है। पूँजीपति को घोर स्वार्थी, कपटी, क्रूर एवं नर्दयी के रूप में चित्रित किया जाता है।

(ग) शोषित वर्ग के जीवन की दीनता का वर्णन : मार्क्सवादी दर्शन में पूँजीपति वर्ग के प्रति घृण के साथ - साथ शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति होती है। अतः किसान और मजदूरों की दयनीय दशा का चित्रण होता है।

(घ) नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण : मार्क्सवादी दर्शन में नारी का यथार्थपूर्ण चित्रण होता है। नारी के सौन्दर्थ या रूपवैभव को कल्पना के द्वारा नहीं देखा जाता है। नारी का सौन्दर्य स्वर्ग मान कर उसकी पूजा नहीं की जाती है। नारी को नारी के रूप में ही स्थूल रूप से देखा जाता है। राजभवनों में सुरक्षित सुकुमारी अबलाओं की अपेक्षा खेत - खलिहानों में काम करनेवाली स्वस्थ - कृषक - बालाओं एवं मजदूरनियों के चित्रण में अधिक प्रवृत्त होता है।

(ङ) सरल शैली : मार्क्सवाद साहित्य का लक्ष्य उच्च वर्ग के सुशिक्षित पाठक नहीं, अपितु, वह जन साधारण के लिए काव्य की रचना करता है। अतः उस में जन - भाषा एवं सरल शैली का प्रयोग होता है। साहित्य की प्राचीन रूढ़ियों - छन्द - अलंकारों आदि - का भी मार्क्सवादी साहित्य में निर्वाह नहीं किया जाता।

6. भारतीय साहित्य में मार्क्सवाद :-

मार्क्सवादी विचारधारा प्रगतिशील है। परम्परागत तथा रूढ़िगत विधानों का विस्फोटन कर यह दर्शन आगे बढ़ता है। लेकिन भारतीय साहित्य में मार्क्स के जन्म के पहले ही विकासवाद साहित्य उपलब्ध होता है। 'मिट्टी की गाडी' (मृच्छकटिक) के रचयता शूद्रक भारत का प्रथम प्रगतिशील साहित्यकार हैं। 'गाथा - सप्तशाती', 'अमरूक - शतक', 'श्रृंगार - शतक', 'आर्यासप्तशती' आदि प्रगतिशील साहित्य के उदाहरण हैं।

7. हिन्दी क्षेत्र में मार्क्सवाद :-

प्राचीन रूढ़ियों एवं उच्च वर्ग के विरोध की दृष्टि से हिन्दी का समस्त सन्त साहित्य प्रगतिशीलता से ओत - प्रोत है। इस साहित्य में यथार्थ एवं मौलिक विषय तथा शैली का प्रयोग हुआ है। समाज, राजनीति, साहित्य एवं भाषा - सभी क्षेत्रों में भारतेन्तु हरिश्चन्द्र व उनके अनुयायी पूरे प्रगतिशील थे। उन्होंने सरलतम भाषा में प्राचीन रूढ़ियों एवं मान्यताओं का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण किया तथा साथ ही विदेशी साम्राज्य की दूषित प्रवृत्तियों पर तीरवा प्रहार किया।

किसानों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने व सुधारात्मक प्रवृत्तियों की दृष्टि से द्विवेदी युगीन साहित्य में भी प्रगतिशील साहित्य उपलब्ध होता है। छायावादी युग में कविता वैयक्तिक प्रवृत्तियों से बहुत अधिक आच्छिन्न हो गयी। उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द के द्वारा सच्ची प्रगतिशीलता का निरूपण हुआ।

1936 से हिन्दी के क्षेत्र में मार्कसवादी साहित्य का प्रस्फु टन अधिक हुआ। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में मार्कसवादी साहित्य की प्रवृत्तियों का विकास होने लगा। अनेक प्रमुख छायावादी कवि - पंत, निशला, नरेन्द्र आदि मार्क्सवाद की ओर चलने लगे। उनका साहित्य 'प्रगतिवाद' के नाम से विरव्यात था। दिनकर, नरेन्द्रशर्मा, भगवती चरण वर्मा, अंचल, नवीन, सुमन, गिरिजाकुमार माथुर आदि कवियों ने मार्कसवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए काव्य - रचना की। विषमता का चित्रण करते हुए दिनकर ने लिखा -

श्वानों को मिलता दूध - बस्त्र, बच्चे भूखे तडपाते हैं।

युवती की लज्जा वसन बेच ; ब्याज चुकाने जाते रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' अपमानों की लाचारी को स्पष्ट करते हैं - 'इन खलिहानों में गूँजरही, किन अपमानों की लाचारी।' मजदूर भाइयों कोसम्बोधित करते हुए चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की कविता -

दुनिया के मजदूर भाइयों, सुन लो एक हमारी बात।

सिर्फ एकता में ही बसता, इस दुनिया के सुख का राज ॥

कथा साहित्य के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा आदि लेखकों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनके साहित्य में जहाँ यथार्थवादी ढ़ंग से समाज की विभिन्न परिस्थितियों का अंकन हुआ है, वहां नग्न अश्लीलता का भी चित्रण पर्याप्त मिलता है। रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय आदि मार्क्सवादी प्रमुख आलोचक हैं।

8. उपसंहार :-

मार्क्सवाद मूलत : अध्यात्मिकता के कारण और एकांगिता के कारण कवि ऊब कर लौट गये। समाजवादी व्यवस्था (Socialism) स्थापित करना मार्क्सवाद का लक्ष्य है। भारत सरकार इसी मार्ग पर अग्रसर होने से मार्क्सवाद भारत में न्यून बनता जा रहा है। भारत में मार्क्सवादी साहित्यकार अधिकांस धनी (Rich) हैं और वे पूँजीपतियों से कम नहीं हैं। वे पहाडियों में वैभवपूर्ण वातावरण में बैठ कर मजदूरों के दुःख दर्द की श्चनाएँ कर सकते हैं। लकिन अनुभूति की सजीवता नहीं है। अतः मार्क्सवादी साहित्य में हृदय स्पन्दन की न्यूनता है। कुछ मार्क्सवादी साहित्यकारों को मतिभ्रम हो कर नग्न - चित्रण को ही वे सच्चा मार्क्सवाद समझने लगे हैं। मार्क्सवादी आलोचकों में मतभेद बढ़ने के कारण रचनाकारों को पर्याप्त उत्साह नहीं मिला। शैली की दृष्टि से भी मार्क्सवादी साहित्य का स्तर नीचे गिर गया। अतः इस विचारधारा में महत्वपूर्ण रचनाएँ न निकल पायी।

Lesson Writer

डॉ. शेख मौला अली

(కత్తిరించి పంపవలెను)

అధ్యాపకుల, విద్యార్థుల సలహాలు, సూచనలు :

అధ్యాపకులు, విద్యార్థులు ఈ స్టడీ మెటీరియల్‌కు సంబంధించిన సలహాలు, సూచనలు, ముద్రణ దోషాలు తెలియపరచినచో, పునర్ముద్రణలో తగు చర్యలు తీసుకొనగలము. తెలియపరచవలసిన చిరునామా : **డిప్యూటీ డైరెక్టర్, దూరవిద్యా కేంద్రం, ఆచార్య నాగార్జున విశ్వవిద్యాలయం, నాగార్జున నగర్ - 522 510.**

Course	Year	Title
M.A. HINDI FIRST YEAR		PAPER-2: THEORY OF LITERATURE

(కత్తిరించి పంపవలెను)

(కత్తిరించి పంపవలెను)

(కత్తిరించి పంపవలెను)